भिखारी

लेखक : डाक्टर सैयद अख्तरहुसेन 'रायपुरी' डी० लि[illegible] (पेरिस)

कलकत्ता—धोकड़िया बागान—एक खोलाबाड़ी। पूरब की जड़ सफेदी फैल चुकी थी। बाहर विधवा के आँसुओं के समान ओस [illegible] रही थी। संसार केले के पत्ते की तरह जाड़े में ठिठुर रहा था। [illegible]लाबाड़ी के अन्दर अँधेरा था। घर क्या, एक बड़ा-सा घोंसला था। [illegible]र घास-फूस, इधर-उधर टट्टियाँ, नीचे गीली जमीन और उस पर [illegible]छ कुत्ते और आदमी।

प्रातः समीर शराब की दुर्गन्ध को वहाँ से ले गया था। गलियों में [illegible]ड के छिलके, जूठी पत्तलें, हड्डियाँ और टूटी हुई बोतलें रात की [illegible] की याद दिला रही थीं। गन्दे कपड़ों में मुँह छिपाये वेश्याएँ [illegible] रही थीं, उनके तकियों के नीचे उनके सतीत्व का मूल्य रखा हुआ [illegible]—पैसे और रुपये—रुपये कम और पैसे ज्यादा। उनकी कीमत बहुत [illegible] थी। रात का सन्नाटा कितना संगीतमय, कितना कवित्वमय था। [illegible]गर उनके बेसुरे अलाप और बेतुकी तानों ने सारी मधुरिमा को [illegible] कर दिया था। वहाँ से दूर चौरंगी के आसपास पाप वैभव के [illegible] में रहता था, पर यहाँ वह अपने नग्न रूप में ताण्डव नृत्य करता था। [illegible] जगह पाप सुन्दर कपड़ों और साफ-सुथरे मकानों में जाकर सभ्य [illegible]ाता था। यहाँ वह असभ्य था—उद्दण्ड था, बन्धनहीन था।

[illegible]सी पाप की बस्ती में एक खोलाबाड़ी थी, जिसके द्वार पर एक [illegible]ाड़ी खड़ी हुई थी। गाड़ीवान कम्बल में लिपटा हुआ भी थर-[illegible]ता था। उसका साथी टीन के दरवाजे से ताला उतार रहा था। [illegible] से आदमियों के जम्हाई लेने और कुत्तों के कान फड़फड़ाने की [illegible] आ रही थी। झाँकने वाले के हाथ में भैंस की खाल का एक [illegible] था। किवाड़ खोल कर उसने अन्दर मुँह डाला। अन्दर से [illegible]ा का एक झोंका तड़प कर बाहर निकला, जैसे किसी पुराने [illegible] प्रायश्चित्त की साँस ली हो। वह आदमी राह छोड़ कर हट

गया । बेधुले आदमियों, बीमार कुत्तों, सडी हुई चटाइयों और शीर्ण वस्त्रों की दुर्गन्ध से बन्द हवा का दम घुटने लगा था ।

अन्दर से लोगों के चलने-फिरने की आहट आने लगी अन्धों के समान सँभल-सँभल कर, टटोल-टटोल कर चलते थे दूसरे से टकराते थे और लड़खड़ा कर कभी-कभी गिर पड़ते अन्धे थे । किसी की आँखे बन्द थीं—उसके भाग्य-द्वार के समा... वे कभी नही खुल सकती थीं । किसी-किसी की आँखे खुली हुई थीं- मे प्रकाश और आँसुओं के सिवाय सब कुछ था । किसी की आँ पडती थीं—जैसे उनकी डरावनी चितवनों में नरकाग्नि छिपी किसी की आँखे बिलकुल सफेद थीं—कफन के समान । आँखे प्रकाशहीन थीं । वे अन्धे भिखारियों की आँखे थीं ।

उनमें मर्द-औरते, बच्चे-बूढे सभी थे । रात के सात बजे वही भैंसागाडी उन्हे इधर-उधर से समेट ले आती थी । खोलाबाड़ी के अन्दर सब एक साथ बैठ जाते थे । हर अन्धे के साथ एक-एक कुत्ता होता था—उसका जन्म-सगी । रात को उनके चम्मल में एक आदमी खाने-पीने की कुछ चीजे डाल जाता था । मुहल्ले के होटलों में जो बचा-खुचा रह जाता था, उसे खोलाबाड़ी का मालिक खरीद लाता था । अन्धों के चम्मल में जूठे टुकड़ों से लिसी हुई हड्डियाँ, उगली हुई तरकारियाँ और बासी चावलों का ढेर लग जाता था । कुत्ते बीच-बीच में चुपके से चम्मल में मुँह डाल कर मास के टुकड़े निकाल कर मुँह चलाया करते थे । अन्धों को पता भी न चलता था, और कभी चलता भी था, तो केवल उनके मुँह बजाने से । तब वे चिल्लाकर या हाथ-पैर बजा कर उन्हे भगाने की निष्फल चेष्टा करते ... एक ... हो जाते थे । ससार में कुत्ते के सिवा उनका अप... चन ... भाग न जायँ ।

फिर अन्धे चटाइयों पर सो जाते थे । अपने दुःख का कम्बल बिछा कर, गुदडियाँ ओढ कर ... दूसरे को वे केवल स्पर्श से पहिचान सकते थे । और—बीच मे कुत्ते—और जवान अन्धे-अन्धि... और जवानी के बीच में कुत्तों ने एक दीवार ... अगर नई दुनिया का रहने वाला पुरानी दुनि... था, तो कुत्ते भौंक कर उसे सचेत कर देते थे

होती थीं, जवानों की गर्म, और कुत्ते खर्राटे भरते थे। बूढ़ों के दिल गर्म होते थे। वे अलग-अलग सोते थे। जवानों के दिल ठंडे थे, वे लिपट-लिपट कर सोते थे। और कुत्ते कभी-कभी मानव-समाज पर कड़ी टीका-टिप्पणी कर उठते थे।

पौ फटते ही भैंसागाड़ी आ खड़ी होती थी। उस 'अन्धालय' का मालिक चाबुक से कुछ देर टीन के दरवाज़े को खटखटा कर अन्धों को जगा देता था और किवाड़ खोल देता था। अन्धे हड़बड़ा कर उठ बैठते थे। एक दूसरे को जगा कर अपनी थैलियाँ और लाठियाँ उठाते थे। मालिक उन्हें गिनता जाता था। कभी-कभी दो-चार अन्धे सोते रह जाते थे, और वे बहुधा जवान होते थे। तब वह अन्दर घुस कर चाबुक से उन्हे जगाता था—उन्हें पीटता जाता था, उस समय तक, जब तक वे गाड़ी पर बैठ न जायँ। मुर्दे जानवर की खाल ज़िंदा आदमी की खाल से मिलती थी और यह रगड एक चीख, एक आह, एक कराह बन जाती थी। अन्धा ईश्वर और मनुष्य को श्राप देता था, जो ईश्वर को उसके सिंहासन और मनुष्य को उसके आसन से खींचता जाता था—नीचे, बहुत नीचे, रसातल की ओर।

गाड़ी वाला उनमें से एक-एक को एक-एक चौक पर छोड़ आता था। सड़कों के मोड़ पर बैठ कर वे शून्य की ओर ताकते थे और अपनी भर्राई हुई आवाज में भीख माँगा करते थे। उनमें से कोई ईश्वर का नारा देता था, कोई कोरे बच्चों का, कोई कई-कई दिनों की भूख का, और वे भीख देने वाले को आशीर्वाद देते थे। ईश्वर से—हाँ, उसी ईश्वर से—उनके लिये प्रार्थना करते थे। वे गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते थे। 'अन्धा घोड़ा, काला कम्बल, दो खुदा की राह पर', 'ना घर तेरा, ना घर मेरा'—अन्धे यही रटते थे। दिन में एक दो बार खोलाबाड़ी वाले का कोई जासूस लुक-छिपकर देख जाता था कि उनमें से कोई सो तो नहीं रहा है। आवाज लगाने में कोई ढिलाई तो नहीं करता है। रात को अपराधी को रोटी नहीं मिलती थी और चाबुक अलग पड़ते थे, इसलिए अन्धे दिन भर चिल्लाते रहते थे।

शाम को वही भैंसागाड़ी उन्हें लाद कर घर ले जाती थी। झाड़-पोंछ कर उनसे सब कुछ ले लिया जाता था और बदले में उन्हे वहाँ भोजन और विश्राम-स्थल मिलता था। खाने के बाद अन्धे गीत याद किया करते थे। लोगों मे करुणा और सहानुभूति उत्पन्न करने के उपाय

सोचते थे। कोई सिर में पट्टी बाँध लेता था, कोई पैर में तेल लगा कर खाल उखाड़ लेता था, कोई लगड़ा बन जाता था। दिन भर में जो अन्धा अठन्नी नहीं कमा सकता था, उस पर मार पड़ती थी। उसे कम से कम आठ आने कमाने ही चाहिए।

अन्धे भिखारियों के लिए दिन-रात, सुबह-शाम सब बराबर थे। वे केवल एक रंग को पहिचानते थे। उनके चारों ओर अँधेरा था—आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग, नरक—सब में अँधेरा था और उनके बीच में सूखी हुई रोटियाँ, गीली चटाइयाँ उड़ा करती थीं।

(२)

एक रात को जब अन्धों को भोजन परोसा जा रहा था, तो कुत्ते किसी अदृश्य व्यक्ति की ओर देखकर भौंकने लगे। भोजन परोसने वाले से एक ने पूछा—"चौधरी, कोई नया मानुस आया है क्या?"

"हाँ जी, एक अन्धी लौंडिया हाथ लगी है, (चुपके से) चेहरा-मोहरा बड़ा अच्छा है जी, लोग सूरत देख कर ही पैसे निकाल फेंकेंगे। रधिया नाम है उसका।"

सब अन्धे अपनी ज्योतिहीन आँखों को फाड़-फाड़ कर इधर-उधर देखने लगे। केवल नन्दू सिर झुकाये जूठे टुकड़ों को चबाता रहा।

एक रासायनिक कारखाने में वह कभी काम किया करता था। एक दिन तेजाब की कोई बोतल उसके हाथों से गिर पड़ी थी और उसके दो-चार छींटों ने ही उसे अन्धा कर दिया था। उसके बाद महीनों वह कलकत्ते की गलियों में ठोकरें खाता रहा। एक दिन कोई आदमी उसे फाँस कर इस बन्दीगृह में ले आया था, जहाँ डेढ वर्ष से वह जीवन के दिन काट रहा था। फिर भी नन्दू अभी जवान था, उसकी धमनियों में खून था—गर्म-गर्म, और उस गर्मी में आग होती थी।

बाहर कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। वह अपनी गुदड़ी में घुसा हुआ सर्दी के मारे थरथरा रहा था। इतने में ऐसा जान पड़ा, जैसे गुदड़ी को कोई अपनी ओर खींच रहा हो। नन्दू ने समझा कि शायद कोई कुत्ता होगा। उसे हटाने के लिये जैसे ही उसने हाथ फैलाया, वह चीख पड़ा। उसके हाथ किसी के शरीर पर गिर कर जैसे स्पन्दनहीन हो गये। उसके शरीर में बिजली-सी दौड़

गई। न-जाने क्यों उसके मन में यह विचार दौड़ गया कि वह उसी नवोढ़ा को स्पर्श कर रहा है।

"रधिया!"

"हाँ, तुम कौन हो जी?"

"तुम्हे जाड़ा लग रहा है, रधिया? मेरा नाम है नन्दू।"

"हाँ, मेरे पास ओढ़ने-को कुछ नहीं है। मेरे पैर ठण्डे हो गये हैं।"

नन्दू ने उठ कर अपनी गुदडी रधिया पर डाल दी। टटोल-टटोल कर उसे सिर से पॉव तक ढँक दिया और स्वय हाथ-पैर बॉध कर उसके पास बैठ गया। वह भी कभी आँख वाला था। रग और प्रकाश का उसे भी कभी ज्ञान था। रग, प्रकाश और सगीत—इनके सयोग से सौन्दर्य का जन्म होता है। अब केवल शब्दों की झनकार उसे सौन्दर्य का ज्ञान करा सकती थी। नन्दू रधिया का चित्र अपने मानस-पट पर खींचने लगा। उसकी आवाज कितनी रसीली थी, वह नवयौवना की आवाज थी। नन्दू दम साध कर उसकी साँस के उतार-चढाव को सुनने लगा। उसे मालूम पडने लगा कि साँसों के हिण्डोले पर बैठ कर वह धरती और आकाश के बीच मे झोंके खा रहा है। अपनी नन्द आँखों में कभी-कभी उसे ज्वलत चिनगारियाँ दीखने लगीं। नन्दू सोचने लगा कि उसकी अँधेरी दुनिया में सचमुच कोई चिनगारी उड़ आई है।

न जाने कैसे हर रात को वे एक दूसरे के समीप पहुँच जाते थे। धीरे-धीरे वे एक दूसरे की चाल, आवाज और स्पर्श को पहिचानने लगे। अन्धों की दुनिया मे जैसे कोई प्रकाश-किरण उतर आई। उस निष्पाप, निष्कलक कुमारी का आगमन उसके जीवन का एक नया परिच्छेद था। ससार उसके लिये कितना प्रीतिहीन था, ईश्वर कितना क्षमाहीन था? अन्धे को कभी किसी कोमलता और मधुरता का अनुभव न हुआ था। उसका हृदय कठोर था—सूखी रोटियों की तरह—पर जब रधिया चलती थी, तो अन्धे की जीवन-तन्त्री के बिखरे हुए तार जैसे सुलझ जाते थे। कभी-कभी वह गाती थी, और थोडी देर के लिए अन्धा अपने आप को भूल जाता था। फिर ठण्डी साँस भर कर वह मन ही मन सोचा करता था कि वह अभागी इस बन्धन मे कैसे आ फँसी? बहुत दिनों के बाद नन्दू को इस भेद का पता चला था, और उसने इस रहस्य को दिल की गहराइयों में छिपा दिया

था—इतनी गहराई में कि उसमें झाँकते हुए अब उसे भी भय मालूम होता था। अब रधिया और नन्दू एक ही गुदड़ी ओढ़ कर सो जाते थे। उन्हे सर्दी नहीं जान पडती थी। रात के सन्नाटे में एक बार रधिया ने नन्दू को अपनी जीवन-कथा सुनाई थी। उसका बाप किसी कम्पनी मे क्लर्क था। वह बूढ़ा था, माँ बीमार थी और उनकी इकलौती बेटी रधिया अन्धी थी। वह माँ-बाप की नयनतारा थी। ढाई वर्ष पहले कम्पनी बन्द हो गई। बेकारी और बुढापा—वह भी एक बुढ़िया और अन्धी बेटी के साथ! इसका मतलब समझना बहुत कठिन है। दो-तीन महीने के अन्दर घर का बहुत-सा सामान एक-एक करके 'चोर-बाज़ार' पहुँच गया। फिर भूख की ज्वाला और लगातार अनशन, चिन्ता और श्रम के कारण बूढा भी रोग-ग्रस्त हो गया। अन्धी रधिया उसके तलवों को सहलाती जाती थी और उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बहती थी। उसकी समझ में नहीं आता था कि सन्ताप और यातना को किस प्रकार कम करे। इसी बीच में उसकी मौसी का पदार्पण उनके घर में हुआ। मौसी की सूरत को रधिया न देख सकती थी; पर उससे न जाने क्यों उसे डर मालूम होता था। वह रोज आती थी और उसकी माँ से कानाफूसी किया करती थी। इस मन्त्रणा में कभी-कभी उसका बाप भी शामिल होता था। पहले औरतों के प्रस्ताव पर वह क्रोध से चिल्ला उठता था; पर धीरे-धीरे वह भी शान्त होने लगा—यहाँ तक कि कई दिनों के बाद वह भी कानाफूसी करने लगा। रधिया को आश्चर्य होता था कि इस गुप्त मत्रणा का अर्थ क्या है? उससे सारी बाते छिपाई क्यों जाती हैं? उसका हृदय धड़कने लगता था। किसी अदृष्ट विपत्ति के भय से वह काँप उठती थी।

उस घटना को याद करके रधिया की हिचकियाँ बँध गई थी। एक दिन उसकी माँ और मौसी ने नहला-धुला कर उसका शृंगार किया था। चोटी गूँथते-गूँथते उसकी माँ रोती जाती थी। रधिया भय से चकित रह गई थी। वह भी चुपके-चुपके रोने लगी थी। यह क्यों हो रहा था, इस गोरखधन्धे को वह समझ नहीं सकी थी। पहले कभी-कभी एक रहस्यमय शब्द उसके कानों तक पहुँचा करता था—विवाह। गीतों मे उसने कई अर्थहीन शब्द सुने थे। यौवन, प्रीतम, प्रेम और जाने क्या-क्या। रधिया यह सोच कर काँपने लगी कि शायद उसका विवाह होने वाला है, शायद वह जवान हो गई है। उसे अपने प्रीतम के पास जाना है। ये सारी नई भावनाएँ उसके लिये कितनी दुःखद थीं। प्रीतम?

यह कौन-सा पशु होता है ? प्रेम ? यह कैसा रोग है ? रधिया कुछ भी नहीं समझ सकती थी।

बाल सँवार कर मौसी उसे एक रिक्शे पर बैठा कर अपने साथ ले गई। माँ-बाप ने रोते-रोते उसे विदा किया और कह दिया कि घबराइयो नहीं, सवेरे मौसी तुझे यहाँ छोड़ जायगी। मौसी दम-दिलासा देकर उसे न जाने कहाँ ले गई। रधिया जैसे चेतनाहीन हो गई थी। उसे इतना याद था कि किसी ने उसे खूब खिला-पिलाकर देर तक बहुत सी बातें सिखाई थीं, जिनका अर्थ बाद में—बहुत बाद में—उसकी समझ में आया था। हाँ, इतना तो वह अवश्य समझ गई थी कि मौसी के कहने पर चलने से उनकी सारी दरिद्रता दूर हो जायगी, यही तो उसके जीवन की कामना थी।

रात हुई, रधिया एक मुलायम बिस्तर पर बैठकर न जाने किस की प्रतीक्षा करने लगी। किसी व्यक्ति ने द्वार खटखटाया। मौसी ने किवाड़ खोले, उसे अन्दर कर के फिर ताला जड़ दिया। रधिया के पास कोई आदमी मौसी के साथ आ खड़ा हुआ। दो कठोर हाथों ने उसकी ठोढ़ी पकड़ कर उसके विवर्ण मुख को ऊपर उठाया। फिर कुछ देर तक मौसी उससे विवाद करती रही। फिर रुपये खनकने लगे और पल भर बाद मौसी ने रधिया को पुचकार कर उसके आँचल में कुछ रुपये बाँध दिये। फिर किवाड़ बन्द हुआ और मौसी बाहर चली गई दो हाथों ने रधिया के शरीर को लपेट लिया. यही प्रेम था ! दुर्गन्धमय मुख उसके मुख पर झुक गया। उसके गाल और ओठ कड़े बालों में छिदने लगे; दुर्गन्ध से दम घुटने लगा,—यही जानवर प्रीतम था ! रधिया का जीवन अन्धकारमय हो गया !

प्रतिदिन प्रातःकाल रधिया अपने घर लौट आती थी और शाम को मौसी उसे अपने साथ ले जाती थी। रोज नये-नये 'प्रीतम' आते थे, प्रतिदिन उसका विवाह होता था। दो साल बीत गये, आये दिन वह बिकती थी; कभी इस बाजार में, कभी उस बाजार में। घूमते-फिरते हुए वह थक कर इस अन्धालय में गिर पड़ी।

(२)

एक दिन रधिया रात को नहीं लौटी।

नन्दू द्वार की ओर मुख किये, साँस रोके किसी की पद-ध्वनि सुन रहा था। उसके चम्मल में कुत्तों ने मुँह डाल दिया; पर वह चुपचाप किसी

की बाट जोहने लगा। रात हो गई, अन्धे और कुत्ते सभी सो गये, पर नन्दू वहीं बैठा रहा। रधिया कहाँ रह गई ? नन्दू चुपके से उठा। एक-एक अन्धे के पास गया और गौर से उसकी साँस की आवाज सुनने लगा। वह कई बार टकराया और कई बार गिरा—मगर कोई नहीं। नन्दू फिर आकर अपनी जगह पर बैठ गया। अपनी आँखें जाने से भी उसे इतना कष्ट न हुआ होगा। आज उसके जीवन की विभूति ही गुम हो गई थी। अब तक उसका नयन-पथ शून्य था; आज उसका जीवन-पथ भी उजड़ चुका था।

सुबह लाठी और थैली सँभालते-सँभालते नन्दू ने धीरे से पूछा—"चौधरी, रधिया कहीं भाग गई क्या ?"

चौधरी हँस पड़ा, चाबुक से उसे कुचल कर कहा—"तुम्हारे लायक़ नहीं थी वह लौंडिया ! आँख के अन्धे नाम नयन-सुख ! जानते हो, कितने दाम लगे हैं—पाँच सौ ! पूरे पाँच सौ ! कड़ाया के राय हीराचन्द ने पूरे पाँच सौ दिये उसके। समझे सरऊ ? प्रेम की पैंग बढा रहे थे बेचारे !" यह कह कर चौधरी ने भैंसों के साथ नन्दू को भी दो-चार चाबुक रसीद कर दिये।

नन्दू चौक पर सिर झुकाये देर तक चुपचाप बैठा रहा। कभी-कभी वह सुना करता था कि मनुष्य में आत्मा नाम का कोई तत्त्व होता है, उसकी अनुभूति न की थी। लेकिन रधिया के साथ जैसे उसके जीवन में कोई नई बात पैदा हो गई थी। आज आँखों के साथ संसार भी उसके लिए अन्धकारमय हो गया था। नन्दू ने कोई आवाज दिन भर न लगाई, आस-पास के दूकानदार उसकी चिल्लाहट से तंग आ जाते थे, अन्धे को निःशक्त देख कर आज उन्हें कुछ अचम्भा-सा हुआ। नन्दू के बेताल गीत से कुत्ते प्रेरणा पाया करते थे। आज वे बार-बार उसे सूँघ कर, प्रश्नसूचक भंगी में गुर्रा कर अलग हट जाते थे। नन्दू खामोश था, और जैसे सारी दुनिया उसके लिये खामोश हो गई थी।

झुटपुटे के साथ नियमानुसार एक भैंसा-गाडी वहाँ ठहरी और नन्दू दूसरे अन्धों के साथ उस पर सवार हो गया। कड़ाया के पास गाड़ीवान का साथी कूद कर अन्दर आ गया, और अन्धों ने गाँठ से पैसे निकालना शुरू किये। नन्दू ने बिना कुछ कहे हुये उसके हाथ पर चार पैसे रख दिये। चौधरी ने पैसे गिन कर जेब में रखे और उसके गले पर हाथ रखते हुये पूछा—"और पैसे कहाँ हैं ?"

नन्दू के मुँह से बोल न निकला, वह चुपचाप बैठा रहा। चौधरी ने एक घूँसा जमा कर झोली छीन ली और उसे छान डाला, फिर गरज कर कहा—"बोलता क्यों नहीं? छटा हुआ है साला! ठहरो, बाड़ी तो पहुँच जायँ।"

भूख और चाबुक की मार के कारण नन्दू उस रात को सो न सका। दो दिन तक तो यों ही होता रहा। नन्दू जब लौटता, तो उसके पास दो-चार पैसे से अधिक न होते। आदमी आवाज़ को भीख देता है, मौन के आगे उसके हाथ रुक जाते हैं। मार की मात्रा दिन-दिन बढ़ती जाती थी; पर नन्दू को हठ-सा हो गया था। जब चौथे दिन भी यही हुआ, तो तंग आकर चौधरी ने उसे अपने घर से लातें मार-मार कर निकाल दिया।

गर्मी का मौसम और आधी रात का सन्नाटा। नन्दू की समझ में न आया कि कहाँ जाय! भूख के मारे अँतड़ियाँ ऐंठ रही थीं, पैर थर-थरा रहे थे। फिर भी ठण्डी-ठण्डी हवा पलकों को थपकियाँ दे रही थी; नन्दू सरक्यूलर रोड के मोड़ के फुटपाथ पर लेट गया। उसके लिये सारा संसार दो अक्षरों में सिमट आया था—भूख! ईश्वर उसे इस पाप के गढ़े में ढकेल देता है, कारखाना उसे अन्धा कर देता है, चौधरी लात मार कर उसे निकाल देता है। अन्धी आँखें और सूखी रोटियाँ—समाज से ले-देकर उसे यही मिला था। उसके जीवन-मरु में सोता फूटा था, पर उसे भी एक सेठ ने निर्जल कर दिया था। भूख और अँधेरा—अँधेरा और भूख! ऊपर तारे जमीन वालों की हालत पर मौन भाषा में विवाद कर रहे थे। थक कर नन्दू की आँखें बन्द हो गईं।

घण्टे भर के बाद वह घबरा कर उठ बैठा। उसके समान बहुत से गृहहीन अभागे फुटपाथ पर सो रहे थे। एकाएक वे चिल्लाकर इधर-उधर भागने लगे। उनमें भिखारी और मोटिये, गरीब जहाज़ी और उस श्रेणी के सब लोग थे, जिनके पास परलोक की आस के सिवाय कुछ

नहीं होता। उनकी चिल्लाहट के साथ नन्दू को लाठियों के प्रहार की ध्वनि भी सुनाई दी। सारा मामला उसकी समझ में उस समय आया जब उस पर भी दो-तीन लाठियाँ पड़ गईं। पुलिस की लाठियाँ—काल-दण्ड के समान निठुर, निर्मम और कठोर। मनुष्य के हाथ में एक बेजान लकड़ी, जो बिना कुछ कहे-सुने हड्डियों को तोड़ती, मांस में घुसती और खून टपकाती जाती थी। फुटपाथ पर वे क्यों सोते हैं? अगर वे मकानों के किराये नहीं दे सकते, तो उन्हें संसार में रहने का क्या अधिकार है? सड़क के दायें-बायें ऊँची-ऊँची हवेलियाँ सिर उठा कर दरिद्रों पर हँस रही थीं। इन्हीं मजदूरों ने इनका निर्माण किया था। उनकी एक-एक ईंट दरिद्रों के खून से सनी हुई थी। दरिद्रों की हड्डियों पर उनका आधार रखा गया था। यह फुटपाथ, यह बाग़, यह मकान, यह संसार—सब सर्वहारा के हाथों से तैयार हुआ था। फिर भी सर्वहारा गृहहीन, आश्रयहीन और पथहीन था।

पुलिस का हल्ला आँधी के समान फुटपाथ पर सोने वालों को खोजता हुआ आगे बढ़ गया। नन्दू थोड़ी देर बेसुध जमीन पर पड़ा रहा। उसके सर से गर्म खून निकल रहा था और आँसू की बूँदों में मिल रहा था। सामने के मकान की चाँदनी से संगीत-लहरी निकल कर पूर्व कुमारी को जगा रही थी। नन्दू का हृदय-स्पन्दन जैसे बन्द-सा होने लगा। इसी आह्वान को सुनने के लिये वह कितना विकल था! इसी तान में कभी उसने अपनी आत्मा को ढूँढ निकाला था—मगर वह संगीत किस सभा में गूँज रहा था? बीच-बीच में निर्लज्ज अट्टहास, शराब के कागों की उड़ान और कुत्सित परिहास! नन्दू समझ गया कि यही सेठ हीराचन्द का मकान था। फिर उसकी आँखें बन्द हो गईं।

अँधेरा

लेखक : प्रोफ़ेसर मुहम्मद मुजीब साहब, बी० ए० (ऑक्सन)

अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था, लेकिन उसकी तैयारियाँ हो रही थीं। आसमान पर बादल पश्चिम की ओर सिर झुकाये सुनहली किरणों मे माँजी हुई पीतल की तरह चमक रहे थे। वायु दिन भर की थकी हुई रुक-रुक कर चल रही थी। चिड़ियाँ बसेरे के लिये ऊँघते हुये वृक्षों पर जमा हो रही थीं। भगवानदीन एक पासी और मगल उसी गाँव का एक कुर्मी शहर से घर वापस लौट रहे थे। उनके सामने सड़क एक सफेद तागे की भाँति, जिसका सिरा खो गया हो, दूर तक पड़ी दिखाई देती थी। सड़क के दोनों ओर, जैसा कि भारत मे हर जगह पाया जाता है, नाले थे। नाले के पार कभी ऊसर, कभी खेत और जरा दूर वृक्षों की आड़ से झाँकते हुये गाँव या झूमते हुये आमो के कुञ्ज।

रात अँधेरी होने वाली थी और उनका गाँव अभी बहुत दूर था, इसलिये दोनों पैर बढाये चले जा रहे थे। मगर थोड़ी देर के बाद भगवानदीन ठहर गया और चारों ओर देख कर कहने लगा—"अब साँझ होय गई, दिन-दिन तो पहुँच न पैबा; आव, जरा सुस्ताय लें।"

सुस्ताने की आवश्यकता पर सब से बड़ा तर्क उनके पास यह था कि दोनों पसीने में नहाये हुये थे और हाँफ रहे थे। मगल भी काफी थक गया था, मगर वह व्यर्थ देर करने पर राजी नहीं हुआ।

"सुस्ताय के का करिहो, सहज-सहज चले चलो, अँधियारी रात में का मालुम का होय जाय।"

"होय का जायी, कौन-सा खजाना लिये जात हौ, जो तुम का चोरन का डर है?"—भगवानदीन ने कहा और सडक के किनारे एक वृक्ष की जड पर जाकर बैठ गया। मगल ने पूर्व से बढते हुये अँधेरे की ओर देखा, फिर आगे की ओर, मगर भगवानदीन के पास एक जगह ढूँढ़ ली।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा—"हम कहेन कि रात अँधेरी हुई है, सड़क जैसी है तुम आपै जानत हो। कहूँ गढ़वा में पाँव पड गवा तो रात भर बैठ के कौन टाँग सेंकिहै ?"

"गढवा-अढ़वा कछु नाहीं हैं, तुम यार अँधियारे में डरात हौ।" भगवानदीन ने मुस्करा कर कहा और अपनी बात का प्रभाव जानने-के लिये उसने मगल की ओर देखा। मगल ने त्योरी चढाई और जमीन को घूरते हुये जवाब दिया—"तुम जैसे पहलवान के साथ भला कौन डरि है, तुम तो एक हाथ माँ-दस चोरन का लिटाय देव।"

"एमाँ गुस्सा होय की कौन बात है ! हम तो ऐसन हँसी माँ कह दिये रहन।" भगवानदीन के स्वर मे इतना खेद और पश्चात्ताप था कि मगल का क्रोध जाता रहा। लेकिन उसने उसे छिपाने की चेष्टा की और कहा—"जानत हन, तुम पासी जात के हौ, लाठी बाँधत हौ, मगर दूसरे आदमी के खियाल भी तो रक्खा करौ।"

भगवानदीन ने इसके जवाब में सिर्फ अपने माथे से पसीना पोंछा, ठडी साँस भरी और इधर-उधर देखने लगा।

जब वे उठ कर फिर चले, तो सूर्य अस्त होने लगा था। पश्चिम की ओर से कुछ धुँधले से प्रकाश के अतिरिक्त मार्ग दिखलाने के लिये और कुछ नहीं था। सडक जैसी खराब और खतरनाक मगल ने बताई थी, नहीं थी, मगर सध्या समय राह चलने वाले को डराने के लिये, यदि वह दिल का कमजोर भी हो, सड़क के दोनों ओर के गढ़े काफी थे और छोटी-छोटी पुलियाँ भी; जिनमे अनायास खयाल होता है कि चोर छिपे बैठे हैं। धीरे-धीरे जो जरा-सी रोशनी थी, वह भी जाती रही। सड़क बजाय सफेद के मटियाले रग की हो गई। गड्ढो में अधकार काले पानी की भाँति भर गया। झाड़ियों और वृक्षों ने एक काली कमली-सी ओढ ली। वृक्षों पर चिडियाँ चुपचाप सो रही थीं और सिवाय मगल और भगवानदीन के पैरों की आहट के चारों ओर भीषण निस्तब्धता थी।

मंगल के हाथ में लाठी और इतना रुपया भी न था, कि उसे चोरों का भय हो, लेकिन उसके ढङ्ग बता रहे थे कि वह अपने होश-हवास कायम रखने की खास कोशिश कर रहा है। अगर कभी उसका पाँव बेअटकल पड़ता तो वह कॉखता या गाली देता या और किसी तरह अपनी झुँझलाहट और घबराहट का प्रदर्शन करता। अगर कभी

कोई चीज हिलती या चलती दिखाई पड़ती, तो वह काँप जाता और गौर से उसकी ओर देखने लगता। भगवानदीन ने उसके मन की स्थिति का अनुभव किया और दिलासे के लिये कहने लगा—"हमारी समझ माँ यो कभौं न आवा कि लोग भला डरात काहेका हैं? जो कहूँ जगल होय, बाघ-चीता होयँ, साँप बिच्छू होयँ तो बातौ हैं। हियाँ तो सब आपै आप डराय जात हैं।" और यह दिखाने के लिये कि उसका सकेत मगल की ओर नहीं है, उसने एक बात और जोड दी—"अब हमारे अपने गाँव का देखौ, कोउ रात में दस कदम बाहर नहीं जात, भला यो बात का है?"

लेकिन मगल ने उसकी बात के अन्तिम शब्दों का खयाल नही किया और समझ गया कि भगवानदीन ने सारा हाल मालूम कर लिया है और अब उसे अपनी वीरता दिखाना चाहता है। भगवानदीन ने उसका सन्देह और पुष्ट कर दिया।

"हम से सब हजार बार कहिन, रात का हुवाँ न जाओ, दिन के बारह बजे शहीद-मर्दन पर न जाओ, दरख्त पर न चढो, ई न करो, ऊ न करो। हम एक न मानेन, जौन मन माँ आवा सो किया, और अबहिन तक देखो जिन्दा हन।"

मगल ने अपनी झुँझलाहट दिखाने के बजाय स्वय भगवानदीन पर आक्रमण करके उसकी बात को झूठ साबित करना चाहा और मुँह बना कर कहा—"हुँह! यो तो सब है, मगर गाँव माँ परसाल जौन मोची मर गवा रहै ओसे पूछौ, सबै कहिन कि ई रास्ते पर तुमको वही भूत मिलि है, जौन दुई बरस पहले एक अहीर का पीछा किहेस रहै। एक न सुनिन, आखिर भवा का? दुई दिन वेहोस पडे रहेन, तीसरे दिन ठडे होय गएँ।"

मगल के लहजे से भगवानदीन समझ गया कि उसने उसकी बात बुरी मानी है, मगर बजाय जवाब देने के उसने समझाने का प्रयत्न किया।

"अब एका कोऊ का करै। जेका मरना होत है, ओके होस कब ठीक रहत हैं?"

"तो तो सभै जानत है!"

"हम तो यो जानत हन कि आदमी का न चोर डराय सकत हैं, न

बाघ-चीता और न भूत-प्रेत.. आदमी आपै अपने का डरावा है...
हमारे चचा सुनावत रहैं..."

और यहाँ पर भगवानदीन ने एक कथा सुनाई, जो उसके चाचा के बचपन की एक घटना थी। उसी गाँव में जाडे की ऋतु मे एक बार रात के समय कुछ लोगों ने आग जलाई थी और उसके चारों ओर बैठे हाथ-पाँव गर्म कर रहे थे। हर तरफ से उन्हे अँधेरा घेरे हुये था, ऐसा अँधेरा जिसमे तारो का कोमल प्रकाश भी पृथ्वी से ऊपर ही रह जाता है, जैसे तीर घने वृक्ष की डालियों मे अटक जाता है। मगर यह उस अन्धकार का पेट भरने के लिये काफी न था। जान पड़ता था कि एक काला भयानक दैत्य उस बेचारी आग को भी ताक रहा है। कभी इधर से कभी उधर से उसकी ओर लपकता है और उसकी गरदन मरोड़ने की चेष्टा कर रहा है, और आग एक सहमी हुई चिड़िया की भाँति कभी झपट कर उस कोने में शरण लेती है, कभी इसमें। कुछ देर तक तो लोग यह तमाशा देखते रहे, लेकिन धीरे-धीरे उन पर भी इसका प्रभाव पड़ने लगा। और अन्त मे जब अन्धकार आक्रमण करता और आग उससे बचने की कोशिश करती, तो उनके भी रोंगटे खडे हो जाते और वे एक दूसरे से और भी लिपट कर बैठ जाते, मानो उन्हे अपने प्राण भी सकट में जान पड़ते थे। उस समय उन्हे चाहिये था कि किसी प्रकार की बातचीत छेड़ कर अपना ध्यान दूसरी ओर लगायें; मगर जब खेती पर टीका-टिप्पणी हो चुकी, तो सब चुप हो गये और अन्धकार का भय दूर करने के लिये उनकी समझ मे कोई बात न आई। कोई एक घण्टे तक सब ऐसे ही सहमे बैठे रहे और किसी के मुँह से एक बात भी न निकली। सोने का समय भी आ गया, लेकिन आग के पास से कोई न उठा।

भगवानदीन का चाचा जो उस समय एक लड़का था, और अपने बेतुकेपन के लिये प्रसिद्ध था, सब के चेहरों को देख कर बोल उठा—
"ई तो जान पड़त है, ऐसी रात होय जेमाँ भूत-प्रेत महुवा की नाईं पेड़ पर से टपकत है।"

यह सुनते ही सब के सब चिल्ला उठे। स्त्रियों ने उसे बुरा-भला कहना शुरू किया, पुरुष उसे समझाने लगे, लेकिन जो विचार भगवानदीन के चाचा ने प्रकट किया था, वह सब के दिलों में मौजूद था। [illegible] सब डरावने क़िस्से सुनने लगे, और उनका भय जितना बढता

था, उतने ही उत्साह से सब कहानियाँ सुनते। एक प्यास-सी सब को लग गई, जो पीने से और तेज होती थी।

एक ने पास के गाँव के एक पहलवान का किस्सा सुनाया। वह एक बहुत बहादुर आदमी था और भूत-प्रेत की कहानियों पर हँसा करता था। लेकिन एक बार जब वह एक बाग से अँधेरी रात को निकला, तो किसी ने एक पेड़ पर से कहा—"अब की बच्चा अच्छे फँसेव!"

पहलवान से लोगों ने कहा था कि भूत-प्रेत नाक से बोलते हैं, और यह आवाज भी वैसी ही थी। मगर पहलवान को फिर भी विश्वास न हुआ, वह समझा कि कोई उसे डराना चाहता है। उसने ललकार कर कहा—"आओ, निकल आओ, देखें तुम का करत हो।"

इसके बाद पता नहीं क्या हुआ। दूसरे दिन एक अहीर ने उसे बाग के किनारे पड़ा पाया। उसका चेहरा नीला पड गया था, आँखें बाहर गिरी पडती थीं, स्पष्ट था कि किसी ने उसका गला घोंट दिया है। उसी के पास एक टूटी लाठी भी पडी थी।

सुनने वालों ने 'दैया रे, दैया रे!' की आवाज लगाई। पीछे फिर-फिर कर देखने लगे। एक को छींक आई, तो सब काँप गये और चिल्ला उठे। मगर यह कथा समाप्त ही हुई थी कि एक बूढा अपनी बीती एक कहानी सुनाने लगा और सब आँखे फाड़-फाड़ कर उसकी तरफ देखने लगे। वृद्ध की आयु कोई सत्तर वर्ष की थी और वह बोलते-बोलते अक्सर खाँसने-खखारने के लिये रुक जाता था। मगर उसकी शैली इतनी अच्छी थी कि सब साँस रोके सुनते रहे।

बूढ़े ने पहले तो अपनी जवानी का हाल बताया। वह बहुत तेज दौड़ा करता था और कई मील एक ही चाल से जा सकता था। आस-पास के गाँवों मे वह डाकगाडी के नाम से मशहूर था और जब कभी कोई सन्देश बहुत जल्दी भेजना होता, तो वे उसे बुलाया करते थे। एक बार वह ऐसे ही किसी काम से रात को वापस आ रहा था। अँधेरे मे रास्ता भूल गया और एक कुँज मे घुस गया, जहाँ एक भूत रहा करता था। वह एक वृक्ष के नीचे मे गुजर रहा था कि उसकी दृष्टि सहसा ऊपर की ओर उठ गई और उसने दो गोल, पीली और चमकीली आँखे देखीं, जो उसे घूर रही थीं। वे चाहे जिसकी आँखें रही हों, उसको मालूम हो गया कि कोई उस पर झपटने वाला है, और वह उलटा भागा। जैसे वह नीचे भाग रहा था वैसे ही वृक्षों पर भी कोई चीज

उचकती-फाँदती हुई उसका पीछा कर रही थी। भागते-भागते वह एक खुले मैदान में पहुँच गया और उसी समय किसी ने नाक से चिल्ला कर कहा—"अब की सार निकल गयो, मुला फिर कभी आवो तो गला घोंट देब।"

वृद्ध चुप हो गया। उसके बाद ही किसी और ने अपनी कहानी सुनाई और यों ही सिलसिला जारी रहा। भूतों के भय ने सब को ऐसा बदहवास कर दिया था कि वे आग में लकडी डालना भूल गये और जब इसका ध्यान आया तो किसी का साहस न हुआ कि जाकर इधर-उधर से कुछ लकड़ियाँ बीन लाय। एक दूसरे को ललकारते और ताव दिलाते रहे, लेकिन मालूम हुआ कि सब मजबूर हैं। वे सब मानो किस शक्ति के कब्जे में आ गये थे और अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकते थे। आग बुझती गई। उसकी गरमी कम होने लगी, तो एक दूसरे को धक्के देकर हलके से बाहर निकालने लगे। कुछ लोग इन धमकियों से बचने के लिये साहस कर के उठ खडे हुए और आपस में घर जाने के प्रश्न पर विचार करने लगे। कोई अकेला जाने पर राजी नहीं था और सब के सब दूर-दूर नहीं तो अलग-अलग अवश्य रहते थे। मगर वे वाद-विवाद ही में व्यस्त थे कि एक लडकी के माथे पर एक सूखी पत्ती आकर लगी, जिसे हवा किसी तरफ से उडा लाई थी। लड़की चिल्ला उठी। जो लोग जाने के लिये खडे थे वे सब भाग कर वापस आ गये और सब के सब फिर आग के गिर्द खडे हो गये। सर्दी और भय से सब काँप रहे थे। हिरनों के एक झुण्ड की तरह, जिसे शिकारियों ने घेर लिया हो, कोई इधर भागने की राय देता था, कोई उधर। लेकिन दस कदम चल कर सब फिर वापस भाग आते और फिर एक ही स्थान पर इकट्ठे हो जाते।

"अब बताओ। भगवानदीन ने मंगल से पूछा—"ई सब कौन भूत देखे न रहन? सब आपै आन तो डरात रहन।"

मंगल ने अपने रोष के बावजूद सारी कथा बडे ध्यान से सुनी थी और उसकी भी अन्त में वही दशा हो गई जो किस्से में उन लोगों की थी। वृक्ष उसे काले भुजंग भूत मालूम होने लगे। झाडियाँ विचित्र, भयानक जानवर बन गईं। अगर आँखें खोलता तो यह खतरा था कि कहीं कुछ दिखाई न दे, अगर बन्द करता तो ठोकर खाने के अलावा यह भय था कि कहीं कोई अचानक उस पर हमला न कर दे। उसकी

कमर टेढ़ी हो गई, सिर चकराने लगा और पैरों में कँपकँपी आ गई। भगवानदीन की बात का उसने कोई उत्तर न दिया, और न अपने आप से यह पूछा कि यह डर किसका है। भगवानदीन ने यह देख कर कि मगल बातें नहीं करना चाहता, अपना मतलब समझाने की और ज्यादा कोशिश नहीं की और किसी सोच में पड गया। कुछ दूर वे इसी तरह चले थे कि मगल एक बार सहमी हुई आवाज मे—"हाय रे!" चिल्लाया और उचक कर भगवानदीन के पैरों के पास गिर पड़ा। उसने सयोग से कहीं आँखें पूरी खोल लीं और आगे सडक के पास उसे एक बड़ा चितकबरा जानवर पिछले पैरों पर बैठा दिखाई दिया। उसने अपने आपको विश्वास दिलाया कि वह एक झाडी है और कुछ नहीं, लेकिन अँधेरे में न हवास कहना मानते हैं न कल्पना। जब वह चल कर जरा और पास पहुँचा, तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह जानवर उठ कर खड़ा हो गया है। मगल ने फिर अपने हवास ठीक करने की कोशिश की, लेकिन मस्तिष्क मे जो चित्र बनना शुरू हुआ था वह बनता रहा। आँखें उसकी क़रीब-करीब बन्द थीं, मगर इस पर भी उसे दिखाई देता था। उसने देखा कि जब वह जानवर के बराबर पहुँचा, तो जानवर ने एक छलाँग मारी। मगल उचक कर अपने आपको बचाना चाहता था, मगर वह सिर्फ लडखड़ा कर भगवान के पाँवों पर गिर पड़ा।

भगवानदीन स्वय घबरा गया। उसने जल्दी से मगल को उठा कर खडा किया, उसके कपडे झाडे और पूछा—"यो तुमका भला होय का गवा जो आपै आप गिर पडेव?"

मगल ने इधर-उधर गौर से देखा और जब उसे विश्वास हो गया कि वास्तव में सब खयाल ही खयाल था, तो उसे बहुत लज्जा आई और अपने ऊपर गुस्सा भी आया। मगर भगवानदीन के सवाल का उसने कोई जवाब न दिया।

"भैया देखौ।" भगवानदीन ने कुछ देर इन्तजार कर के कहा—"तुम फिर ऐसा करिहौ तो हम तुमका छोड़के चले जइबै। तुम तो हम हूँ का डेराय दियो।"

"जाओ, चले जाओ, तुमका हम कब रोके रहेन।" मगल ने रूखे स्वर मे कहा—"हम का तुम्हरे बिना घर न पहुँच पाउब?"

भगवानदीन को मगल की हरकत बहुत नापसन्द हुई थी, क्योंकि

वह समझ गया कि मगल आप ही आप डर गया था। इसके बाद जब मगल ने बजाय उसका उपकार मानने के जबान चलाना शुरू किया, तो वह खफा हो गया और निश्चय कर लिया कि मंगल को छोड़ कर आगे निकल जायगा, लेकिन कुछ कदम आगे चलने पर उसे तरस आ गया और उसने इरादा बदल दिया। अब मगल की पारी थी। बोला—"जाओ, जाओ, चले काहे नाहीं जात हौ?" उसने दाँत पीस कर कहा, जब उसने देखा कि भगवानदीन ठहर गया—"तुम सार बदनाम हमका करत हौ, और डरात खुद हौ।"

भगवानदीन उसके सामने खडा हो गया। "हम पचास बार ई सड़क पर गये हन, हम का कभों कुछ न दिखाई दिया, न कभों हम डरायन। आज भगवान् जाने हमका का सूझा जो तुम जैसे नामर्दन के साथ होय लिहेन। का कही तुम्हरे बुढिया के खियाल आइ जात है, नाहीं तो गर्दन मिरोड़ के तुम का यही नाली में फेंक देई। तुम जैसे नामर्द।"

मगल पहले तो भगवानदीन को गौर से देखता रहा। जब भगवानदीन ने गर्दन मरोड़ने की धमकी दी, तो उससे न रहा गया और भगवानदीन ने वाक्य पूरा भी नहीं किया था कि उसने घुमा कर भगवानदीन के एक लाठी मारी। लाठी कनपटी पर पड़ी और भगवानदीन चक्कर खा कर गिर पड़ा, लेकिन मगल ने अपने वार का नतीजा नहीं देखा। लाठी मारते ही उसके कानों मे शोर-सा होने लगा, आँखों के सामने अँधेरा-सा आ गया और बिना सोचे-समझे वह उस जगह से भागा। जितना तेज वह भागता था और जितनी दूर वह निकलता जाता था उतना ही उसे इस बात का भय होता जाता था कि उसके इस काम की खबर फैल गई। जमीन, पेड़, हवा सब जान गये और उसके लिये बचने का कोई उपाय नहीं। कभी एकबारगी उसे सामने एक गड्ढा दिखाई देता और जब वह उसे फाँद कर दूसरी तरफ पहुँचता, तो मालूम होता कि कुछ भी नहीं था। कभी उसके सामने पेड़ का पेड़ आकर खड़ा हो जाता और जब वह समझता कि बस अब टक्कर लगी और सिर फटा, तो मालूम हो जाता कि सिवाय हवा के कुछ भी नही। कभी उसे ख्याल होता कि पेड़, नाले, नालियाँ सब उसके पीछे दौडे चले आ रहे हैं और सब मिल कर उसका रास्ता रोक लेंगे। पेड़ों और नाले-नालियों के विरोध ने तो उसे इतना भयभीत नहीं किया, लेकिन जब उसे यकायक वे कहानियाँ याद आतीं, जो

भगवानदीन ने उसे सुनाई थी, तो उसकी हिम्मत जवाब दे देती। मगर क्या हो सकता था ?

मगल भागता रहा। कुछ देर के बाद जब उसका दम टूट गया, तो उसने अपनी चाल कम की और अपने आप से पूछा कि आखिर जा कहाँ रहा है ? सयोग से वह सड़क ही पर जा रहा था और कुछ सोचने के बाद उसने यह भी मालूम कर लिया कि गाँव की ही तरफ जा रहा है। लेकिन इसी पर उसे याद आ गया कि आगे रास्ते में पेड़ बहुत घने-घने हैं और सडक के दोनों ओर ऊँचे टीले भी हैं। मगल ने दृढ निश्चय कर लिया कि अब बेकार किसी चीज से न डरेगा। मन में जो सन्देह बाकी था उसे निकालने की कोशिश की, मगर जो देखा तो हाथ में लाठी भी नहीं थी। वापस लौटने के सिवा दूसरा कोई चारा न रहा। पहले तो वह धीरे-धीरे चलता रहा और अपने ऊपर क़ाबू रक्खा; लेकिन फिर भी ज़रा-सी आहट होती तो उसके कान खडे हो जाते। एक बार सडक के पास एक पेड़ पर कुछ आवाज-सी हुई, तो उसने अपनी चाल तेज कर दी। फिर यह सोच कर कि इस चाल से चला तो बहुत देर हो जायगी, उसने दौड़ना शुरू कर दिया। दौड़ते-दौड़ते उसे ख्याल हुआ कि सड़क के किनारे कुछ दूर पर एक जानवर खड़ा है। उसने मुड़ कर गौर से देखा, तो सचमुच कुत्ते के कद का कोई जानवर खड़ा था। मगल ने तुरन्त निश्चय कर लिया कि भेडिये के सिवा कुछ और नहीं हो सकता और फिर उसी तरह बदहवास होकर भागा। अगर उसने अपने पीछे एक दृष्टि डाली होती तो उसे मालूम हो जाता कि जैसे ही वह एक ओर को भागा, वैसे ही लोमड़ी भी दूसरी ओर भाग गई थी। लेकिन अब उसमें इतना साहस कहाँ था ?

वह इतना थक गया कि अचेत होकर गिरने वाला था, मगर अन्तिम समय मे उसको दूर सड़क पर एक लम्बा-सा शरीर पड़ा हुआ दिखाई दिया। मगल ने देखते ही पुकारना शुरू किया—"भगवान-दीन ! भगवानदीन !" उसके पुकारने से पास के वृक्षों पर कुछ चिड़ियाँ जाग उठीं और पर फट-फटाने लगीं।

गर्म कोट

लेखक : श्री राजेन्द्रसिंह बेदी

मैंने देखा है, मेराजुद्दीन टेलर मास्टर की दुकान पर बहुत से बढिया-बढिया सूट टगे रहते है। उन्हे देख कर अकसर मेरे मन मे विचार उत्पन्न होता है कि मेरा अपना गर्म कोट बिलकुल फट गया है। और इस वर्ष हाथ तग होते हुए भी मुझे एक नया गर्म कोट अवश्य सिलवा लेना चाहिये। टेलर मास्टर की दुकान के सामने से न निकलूँ या अपने विभाग के मनोरजन क्लब में न जाऊँ तो सम्भव है मुझे गर्म कोट का ध्यान ही न आये। क्योंकि क्लब में जब सन्तासिंह और यजदानी के कोटों के बढिया वर्स्टेड (worsted) को देखता हूँ तो मैं अपने कोट के पुरानेपन को तीव्रता के साथ अनुभव करने लगता हूँ, जैसे वह पहले से कहीं अधिक फट गया है।

बीबी-बच्चो को पेट भर रोटी खिलाने के लिये मुझ जैसे साधारण क्लर्क को अपनी बहुत-सी आवश्यकताएँ कम करनी पड़ती हैं और उन्हें जिगर तक पहुँचती हुई सर्दी से बचाने के लिये स्वय मोटा-झोटा पहिनना पड़ता है। यह गर्म कोट मैंने पार साल देहली दरवाजे से बाहर पुराने कोटों की एक दुकान से मोल लिया था। कोटों के व्यापारी ने पुराने कोटों की सैकड़ों गाँठे किसी मरॉजा-मरॉजा-ऐएड कम्पनी, कराची से मँगवाई थीं। मेरे कोट में नकली सिल्क के अस्तर से बनी हुई भीतर की जेब के नीचे मरॉजा-मरॉजा ऐएड को० का लेबिल लगा हुआ था। मगर कोट मुझे मिला बहुत सस्ता। मँहगा रोये एक बार और सस्ता रोये बार-बार.. मेरा कोट हमेशा फटा रहता था।

इसी दिसम्बर की एक शाम को मनोरजन क्लब से लौटने पर मैं इच्छा होने पर अनारकली में से गुजरा। उस समय मेरी जेब में एक दस रुपये का नोट था। आटा-दाल, ईंधन, बिजली और बीमा कम्पनी के बिल चुका देने पर मेरे पास वही दस का नोट बच रहा था। जेब में दाम हों तो अनारकली मे से गुजरना बुरा नही। उस समय अपने आप पर क्रोध भी नहीं आता, बल्कि अपना व्यक्तित्व कुछ भला-भला

मालूम होता है। उस समय अनारकली मे चारों ओर सूट ही सूट दिखाई पड़ रहे थे—और साड़ियाँ। चन्द साल से हर नत्थू खैरा सूट पहिनने लगा है। . मैंने सुना है गत कुछ वर्षो में कई टन सोना हमारे देश से बाहर चला गया है। . शायद इसीलिये लोग शारीरिक सजावट का अधिक ध्यान रखते है। नये-नये सूट पहिनना और खूब शान से रहना हमारी निर्धनता का पुष्ट प्रमाण है। अन्यथा जो लोग सचमुच धनी हैं, ऐसी शान-शौकत और दिखलावे की कुछ भी परवाह नहीं करते।

कपडे की दुकानों मे वर्स्टेड के थानों के थान खुले पड़े थे। उन्हें देखते हुए मैंने मन में कहा—"क्या मैं इस महीने के बचे हुए दस रुपयों में से कोट का कपड़ा खरीद कर पत्नी और बच्चो को भूखा मारूँ? लेकिन कुछ देर के बाद मेरे मन में नये कोट के नापाक विचार की प्रतिक्रिया शुरू हुई। मैं अपने पुराने गर्म कोट का बटन पकड कर उसे बल देने लगा। चूँकि तेज-तेज चलने से मेरे शरीर में गर्मी आ गई थी, इसलिये ऋतु की ठढ और इस प्रकार के बाहरी प्रभाव मेरी कोट खरीदने की इच्छा को पूर्ण करने में असफल रहे। मुझे तो उस समय अपना वह कोट भी सरासर तकल्लुफ दिखाई पडने लगा।

ऐसा क्यों हुआ? मैंने कहा है जो आदमी वास्तव मे धनी हैं, वे दिखलावे की कोई फिक्र नहीं करते। जो लोग सचमुच धनी हो उन्हें तो फटा हुआ कोट बल्कि कमीज भी तकल्लुफ में दाखिल समझनी चाहिये। तो क्या मैं सचमुच धनी था कि...?

मैंने घबरा कर व्यक्तिगत विश्लेषण छोड दिया और बडी मुश्किल से दस का नोट सही-सलामत लिये घर पहुँच गया।

शम्मी—मेरी पत्नी, मेरी प्रतीक्षा कर रही थी।

आटा गूँधते हुए उसने आग फूँकनी शुरू कर दी। कमबख्त मगलसिंह ने इस बार लकडियाँ गीली भेजी थीं। आग जलने का नाम ही न लेती थी। अधिक फूँकें मारने से गीली लकडियों में से और भी अधिक धुआँ उठा। शम्मी की आँखें लाल अँगार हो गईं। उन से पानी बहने लगा।

"कमबख्त कहीं का मगलसिंह!" मैंने कहा "इन भीगी आँखों के लिये मगलसिंह तो क्या, मैं सारी दुनिया से लडने पर आमादा हूँ—"

बहुत कोशिशों के बाद लकड़ियाँ धीरे-धीरे चटखने लगीं। आखिर

उन भीगी आँखों के पानी ने मेरे गुस्से की आग बुझा दी...शम्मी ने मेरे कन्धे पर सिर रक्खा और मेरे फटे हुए गर्म कोट मे पतली पतली उगलियाँ डालते हुए बोली—"अब तो यह किसी काम का नहीं रहा।"

मैंने धीमे स्वर मे कहा—"हाँ।"

"सी दूँ ?.. यहाँ से.. "

"सी दो, अगर कोई एकाध तार निकाल कर रफू कर दो तो क्या कहने है।"

कोट को उलटा करते हुए शम्मी बोली—"अस्तर को तो मुई टिड्डियाँ चाट रही हैं .नक़ली रेशम का है न . यह देखिये !"

मैंने शम्मी से अपना कोट छीन लिया और कहा—"मशीन के पास बैठने के बजाय तुम मेरे पास बैठो। शम्मी.. देखती नहीं हो दफ्तर से आ रहा हूँ.. यह काम तुम उस समय कर लेना जब मैं सो जाऊँ।"

शम्मी मुस्कराने लगी।

वह शम्मी की मुस्कराहट और मेरा फटा हुआ कोट !

शम्मी ने कोट को खुद ही एक ओर रख दिया। बोली—"मैं खुद भी इस कोट की मरम्मत करते-करते थक गई हूँ.. इसकी मरम्मत करने में उस गीले ईंधन को जलाने की तरह जान देना पड़ती है . आँखें दुखने लगती हैं .आखिर आप अपने कोट के लिये कपड़ा क्यों नहीं खरीदते ?"

मैं कुछ देर सोचता रहा।

यों तो मैं अपने कोट के लिये कपड़ा खरीदना पाप समझता था, मगर शम्मी की आँखें ! उन आँखों को कष्ट से बचाने के लिये मैं मगलसिंह तो क्या सारी दुनिया से लड़ने के लिये तैयार हो जाऊँ, वर्स्टेड के थानों के थान खरीद लूँ। नये गर्म कोट के लिये कपडा खरीदने का विचार मन मे उठा ही था कि पुष्पामणि भागती हुई आ गई। आते ही बरामदे में नाचने और गाने लगी।

मुझे देखते हुए पुष्पामणि ने अपना नाच और गाना खत्म कर दिया। बोली—"बाबू जी . आप आ गये ?—आज बड़ी बहिनजी (अध्यापिका) ने कहा था कि मेज़पोश के लिये दोसूती लाना, और

गर्म कपड़े पर काट सिखाई जायगी। गुनिया - नाप के लिये और गर्म कपड़ा ”

चूँकि उस समय मेरे गर्म कोट खरीदने की बात हो रही थी, शम्मी ने जोर से एक चपत उसके मुँह पर लगाई और बोली—“इस जन्म-जली को हर समय.. हर समय कुछ न कुछ खरीदना ही होता है . मुश्किल से इन्हे कोट सिलवाने के लिये राजी कर रही हूँ . ”

—वह पुष्पामणि का रोना और मेरा नया कोट !

मैंने अपने स्वभाव के विरुद्ध ऊँची आवाज से कहा—“शम्मी !”

शम्मी काँप गई। मैंने गुस्से से आँखें लाल करते हुए कहा—“मेरे इस कोट की मरम्मत कर दो .अभी. किसी तरह करो ऐसे, जैसे रो-पीट कर मगलसिंह की गीली लकड़ियाँ जला लेती हो . तुम्हारी आँखें ! हाँ ! याद आया...देखो तो पुष्पामणि कैसे रो रही है। पोपी बेटा ! इधर आओ न . इधर आओ मेरी बच्ची ! क्या कहा तुमने ? बोलो तो ..दोसूती ? गुनिया नाप के लिये और काट सीखने को गर्म कपड़ा ?—बच्चू नन्हा भी तो ट्राईसिकिल का राग अलापता और गुब्बारे के लिये मचलता सो गया होगा। उसे गुब्बारा न ले दोगी तो मेरा कोट सिल जायगा, है न ?...कितना रोया होगा बेचारा. शम्मी ! कहाँ है बच्चू ?”

“जी सो रहा है।” शम्मी ने सहमे हुए जवाब दिया।

“अगर मेरे गर्म कोट के लिये तुम इन अबोधों से ऐसा व्यवहार करोगी, तो मुझे तुम्हारी आँखों की परवाह ही क्या है ?” फिर मैंने मन में कहा—क्या यह सब मेरे गर्म कोट के लिये हो रहा है। शम्मी सच्ची है या मैं सच्चा हूँ। पहले मैंने कहा—दोनों . मगर जो सच्चा होता है उसका हाथ हमेशा ऊपर रहता है। मैंने खुद ही दबते हुए कहा—“तुम खुद भी तो उस दिन काफूरी रंग के मीनाकारी काँटों के लिये कह रही थीं ”

“हाँ .जी कह तो रही थी मगर.. ”

मगर ..मगर उस समय तो मुझे अपने गर्म कोट की जेब मे दस रुपये का नोट एक बड़ा भारी खज़ाना मालूम हो रहा था !

× × ×

दूसरे दिन शम्मी ने मेरा कोट कोहनियों पर से रफू कर दिया। एक जगह, जहाँ पर से कपड़ा बिलकुल उड़ गया था, सफाई और

सावधानी से काम लेने पर भी सिलाई पर भद्दी सिलवटे पड़ने लगी। उस समय मेराजुद्दीन टेलर मास्टर की दुकान की दुकान मेरे ध्यान मे घूमने लगी। और यह मेरी कल्पना की उडान अकसर मुझे मुसीबत मे डाले रखती है। मैंने मन में कहा—"मेराजुद्दीन की दुकान पर ऐसे सूट भी तो होते हैं, जिन पर सिलाई सहित सौ रुपये से भी अधिक लागत आती है। . मैं एक साधारण क्लर्क हूँ ..उसकी दुकान में लटके हुए सूटों की कल्पना करना है ..व्यर्थ "

मुझे फुरसत मे पाकर शम्मी मेरे पास आ बैठी। और हम दोनों खरीदी जाने वाली चीजो की सूची बनाने लगे.. जब माँ-बाप इकट्ठे होते हैं तो बच्चे भी आ जाते है पुष्पामणि और बच्चू आ गये—आँधी और पानी की तरह शोर मचाते हुए।

शम्मी को खुश करने के लिये नहीं, बल्कि यों ही मैंने काफूरी रग के मीनाकारी काँटे सब से पहिले लिखे। अचानक रसोई की ओर मेरी नजर गई। चल्हे मे लकड़ियाँ धड़धड़ जल रही थीं. और इधर शम्मी की आँखे भी दो चमकते हुए सितारों की तरह प्रकाशित थीं। मालूम हुआ कि मगलसिंह अपनी लकड़ियाँ वापस ले गया है।

"वह शहतूत के डडे जल रहे हैं और खोखा।"—शम्मी ने कहा।

"और उपले?"

"जी हाँ, उपले भी "

"मगलसिंह देखता है—शायद मैं भी जल्द ही गर्म कोट के लिये अच्छा-सा वर्स्टेड खरीद लूँ ताकि तुम्हारी आँखे यों ही चमकती रहे, इन्हे कष्ट हो—इस महीने की तनख्वाह मे तो गुंजायश नहीं . अगले महीने जरूर जरूर "

"जी हाँ, जब सर्दी गुजर जायगी . "

पुष्पामणि ने कई चीजें लिखाईं—दोसूती, गुनिया नाप के लिये, गर्म ब्लेजर, हरे रग का एक वर्ग गज, डी० एम० सी० के गोले, गोटे की मगजी—और इमरतियाँ और बहुत से गुलाब जामुन . मुई ने सब कुछ ही तो लिखवा दिया। मुझे दायमी कब्ज था। मैं चाहता था कि यूनानी दवाखाने से 'अतरीफल जमानी' का एक डिब्बा भी ला रक्खूँ। दूध के साथ थोड़ा-सा पीकर सो जाया करूँगा। मगर मुई पुष्पा ने इसके लिये गुंजायश ही कहाँ रक्खी थी। और जब पुष्पामणि ने कहा—"गुलाबजामुन," तो उसके मुँह में पानी भर आया।

मैंने कहा—सब से जरूरी चीज तो यही है . शहर से वापस आने पर मैं गुलाबजामुन वहाँ छिपा दूँगा जहाँ सीढियों में बाहर जमादार अपना कलसा रख दिया करता है, और पुष्पामणि से कहूँगा कि मैं तो लाना ही भूल गया. तुम्हारे लिये, गुलाबजामुन ओ हो ! उस समय उसके मुँह मे पानी भर आवेगा, और गुलाबजामुन न पाकर उसका अजीब हाल होगा।

फिर मैंने सोचा—बच्चू भी तो सुबह से गुब्बारे और ट्राइसिकिल के लिये जिद कर रहा था। मैंने एक बार अपने आप से सवाल किया—"अतरीफल जमानी ?" शम्मी बच्चू को पुचकारते हुये कह रही थी—"बच्चू बेटी को ट्राइसिकिल ले दूँगी। अगले महीने बच्चू बेटी सारा दिन चलाया करेगी, ट्राइसिकिल पोपी मुन्ना कुछ नहीं लेगा "

बच्चू चलाया करे "गी" और पोपी मुन्ना नहीं ले "गा !"

—और मैंने शम्मी की आँखों की कसम खाई कि जब तक ट्राइ-सिकल के लिये छ. सात रुपये जेब मे न हों, मैं नीले गुम्बद के बाजार से नहीं गुजरूँगा। इसलिये कि दाम न होने की सूरत मे नीले गुम्बद से गुजरना बुरा। ख्वाह-मख्वाह अपने आप पर गुस्सा आयगा, अपने आप से घृणा होगी।

उस समय शम्मी बेलजियमी आईने के अण्डाकार टुकडे के सामने अपने काफूरी सफेद सूट मे खड़ी थी। मैं चुपके से उसके पीछे जा खड़ा हुआ और कहने लगा—"बताऊँ, तुम इस समय क्या सोच रही हो ?"

"बताओ तो जानूँ ."

"तुम कह रही हो, काफूरी सफेद सूट के साथ वह काफूरी रंग के मीनाकारी के काँटे पहिन कर जिलेदार की पत्नी के घर जाऊँ तो दंग रह जाय "

"नहीं तो !" शम्मी ने हँसते हुए कहा—"आप मेरी आँखों की तारीफ करते है, मैंने सोचा, देखूँ तो इनमे क्या धरा है . सच्ची बात तो यह है कि अगर आप सचमुच मेरी आँखों के प्रशसक होते तो कभी का गर्म "

मैंने शम्मी के मुँह पर हाथ रख दिया। मेरी सारी खुशी बेबसी मे बदल गई। मैंने धीरे से कहा—"बस, . इधर देखो, अगले महीने—जरूर खरीद लूँगा . "

"जी हाँ, जब सर्दी "

—फिर मैं अपनी इस सुन्दर दुनिया को, जिसके निर्माण में केवल दस रुपये लगे थे, कल्पना में बसाये बाजार चला गया।

× × ×

मेरे सिवा अनारकली में से गुजरने वाले हर सम्मानित आदमी ने सूट पहिन रक्खा था। लाहौर के एक मोटे-तगड़े जेंटिलमैन की गरदन नेकटाई और कलफदार कालर के कारण मेरे छोटे भाई के पालतू दुबले कुत्ते "टाइगर" की गरदन की तरह अकड़ी हुई थी। मैंने उन सूटों की ओर देखते हुए मन में कहा—"लोग सचमुच बहुत निर्धन हो गये है .इसी महीने न जाने कितना सोना-चाँदी हमारे देश से बाहर चला गया।" काँटों की दुकान पर मैंने कई जोड़ी काँटे देखे। अपनी कल्पना-शक्ति की सहायता से मे शम्मी के काफूरी सफेद सूट पहिने हुए काल्पनिक चित्र को काँटे पहिना कर पसन्द या नापसन्द कर लेता...काफूरी सफेद सूट ..काफूरी मीनाकारी के काँटे .इतनी अधिक किस्मों के कारण मैं उनमें से एक भी न पसन्द कर सका।

उस समय बाजार मे मुझे यजदानी मिल गया। वह मनोरजन क्लब से, जो वास्तव में परेल क्लब था, पन्द्रह रुपये जीत कर आया था। उसके चेहरे पर यदि सुर्खी और प्रसन्नता की लहरे दिखाई देती थी, तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं थी। मैं एक हाथ से अपनी जेब की सिलवटों को छिपाने लगा। निचली बाईं जेब पर एक रुपये के बराबर कोट से मिलते हुये रग का पैबन्द बहुत ही भद्दा दिखाई पड़ रहा था।...मैं उसे भी एक हाथ से छिपाता रहा। फिर मैंने मन मे कहा—"क्या ठीक, यजदानी ने मेरे कन्धे पर हाथ रखने से पहले मेरी जेब पर की सिलवटे और वह रुपये बराबर कोट के रग का पेवन्द देख लिया हो इसकी भी प्रतिक्रिया शुरू हुई और मैंने साहसपूर्वक कहा—"मुझे क्या परवाह है . यजदानी मुझे कौन-सी थैली दे देगा और इसमें बात ही क्या है।" यजदानी और सन्तासिह ने बहुत बार मुझसे कहा है कि वे उच्च विचारों की अधिक परवाह करते हैं और वर्स्टेड की कम।"

मुझसे कोई पूछे। मैं वर्स्टेड की अधिक परवाह करता हूँ और उच्च विचारों की कम।

यजदानी बिदा हुआ और जब तक वह नजर से ओझल न हो गया, मैं गौर से उसके कोट के बढ़िया वर्स्टेड को पीठ की ओर से देखता रहा।

फिर मैंने सोचा कि सब से पहले मुझे पुष्पामणि के लिए गुलाब जामुन और इमरतियाँ खरीदनी चाहियें। कहीं लौटते समय सचमुच भूल ही न जाऊँ। घर पहुँच कर उन्हे छिपाने से खूब तमाशा रहेगा। मिठाई की दुकान पर खौलते हुए तेल में कचौड़ियाँ खूब फूल रही थी। मेरे मुँह मे पानी भर आया। उसी तरह जैसे गुलाबजामुन की कल्पना से पुष्पामणि के मुँह मे पानी भर आया था। क़ब्ज और अतरीफल जमानी के खयाल के होते हुये भी मैं सफेद पत्थर की मेज पर कोहनियाँ टिकाकर बडे चाव से कचौड़ियाँ खाने लगा।...

हाथ धोने के बाद जब पैसों के लिये जेब टटोली, तो उसमे कुछ भी न था। दस का नोट कहीं गिर गया था!

× × ×

कोट के भीतर की जेब में एक बड़ा-सा छेद हो रहा था। नकली रेशम को कीडे चाट गये थे। जेब में हाथ डालने पर उस जगह, जहाँ मरॉजा-मरॉजा एण्ड को० का लेबिल लगा हुआ था, मेरा हाथ बाहर निकल आया। नोट वहीं से बाहर गिर गया होगा।

एक क्षण में ऐसा दिखाई पडने लगा, मानो कोई भोली-सी भेड अपने सुन्दर बाल उतर जाने पर दिखाई पडने लगती है।

हलवाई भॉप गया। खुद ही बोला—"कोई बात नही बाबू जी . पैसे कल आ जायँगे।"

मैं कुछ न बोला कुछ बोल ही न सका।

केवल कृतज्ञता-प्रकाश के लिये मैंने हलवाई की ओर देखा। हलवाई के पास ही गुलाब-जामुनें शीरे में पडी थीं। तेल मे फूलती हुई कचौड़ियों के धुएँ में से लाल-लाल इमरतियाँ जिगर पर दाग लगा रही थीं। . और कल्पना मे पुष्पामणि का धुँधला-सा चित्र फिर गया।

मैं वहाँ से बादामी बाग की ओर चल दिया और पौन घण्टे के करीब बादामी बाग की रेलवे-लाइन के साथ-साथ चलता रहा। इस बीच जकशन की ओर से एक मालगाडी आई। उसके पॉच मिनट बाद एक शण्ट करता हुआ इजन निकला, जिसमे से दहकते हुए सुर्ख कोयले लाइन पर गिर रहे थे। मगर उस समय करीब ही की साल्ट रिफाइनरी में से बहुत से मजदूर ओवर-टाइम लगा कर वापस लौट रहे थे। . मैं लाइन के साथ-साथ नदी के पुल की ओर चल दिया। चॉदनी रात

में सर्दी के होते हुए भी कालेज के चन्द मनचले नवयुवक नौका चला रहे थे।

"प्रकृति ने अजीब सजा दी है मुझे।" मैंने कहा—"पुष्पामणि के लिये गोटे की मगजी, दोसूती, गुलाबजामुन और शम्मी के लिये काफूरी मीनाकारी काँटे खरीदने से भी बढ कर कोई अपराध हो सकता है। किस निर्दयता और बेदर्दी से मेरी एक सुन्दर, मगर बहुत सस्ती दुनिया नष्ट कर दी गई है जी तो चाहता है कि मैं भी प्रकृति की एक सर्वश्रेष्ठ रचना तोड़-फोड़ कर रख दूँ।"

मगर पानी मे नौका खेने वाला लड़का कह रहा था—"इस मौसम मे तो रावी का पानी घुटने-घुटने से ज्यादा कहीं नहीं होता।"

"सारा पानी तो ऊपर से ऊपर बारी दोआब ले लेती है .और यों भी आजकल पहाड़ो पर बर्फ नहीं पिघलती .." दूसरे ने कहा।

मैं लाचार घर की ओर लौटा और बड़ी बेदिली से जंजीर हिलाई। मेरी इच्छा और अनुमान के अनुकूल पुष्पामणि और बच्चू नन्हा बहुत देर हुई, देहलीज पर से उठ कर बिस्तरों मे जा सोये थे। शम्मी चूल्हे के पास शहतूत के अधमरे कोयलों को तापती हुई कई बार ऊँघी और कई बार चौंकी थी। वह मुझे खाली हाथ देख कर ठिठक गई। उसी के सामने मैंने चोर जेब के अन्दर हाथ डाला और लेबिल के नीचे से निकाल लिया। शम्मी सब कुछ समझ गई। वह कुछ न बोली कुछ बोल ही न सकी।

मैंने कोट खूँटी पर लटका दिया। मेरे पास ही दीवार का सहारा लेकर शम्मी बैठ गई। और हम दोनों सोते हुए बच्चों और खूँटी पर लटकते हुए गर्म कोट को देखने लगे।

अगर शम्मी ने मेरा इन्तजार किये बिना वह काफूरी सूट बदल दिया होता, तो शायद मेरी अवस्था इतनी परिवर्त्तित न होती।

× × ×

यजदानी और सतासिंह 'मनोरंजन क्लब' में परेल खेल रहे थे। उन्होंने दो-दो तीन-तीन घूँट पी भी रक्खी थी। मुझसे भी पीने के लिये आग्रह करने लगे, मगर मैंने इनकार कर दिया। इसलिये कि मेरी जेब मे दाम नहीं थे। सन्तासिंह ने अपनी ओर से एक आध घूँट जबरदस्ती मुझे भी पिला दिया—शायद इसलिये कि वे जान गये थे कि इसके

पास पैसे नहीं हैं, या शायद इसलिये कि वे ऊंचे विचारों की वस्टेंड से अधिक परवाह करते थे।

अगर घर में उस दिन शम्मी को वही काफूरी सफेद सूट पहिने हुये देख कर न आता, तो शायद परेल में भाग्य की परीक्षा लेने को मेरा मन भी न चाहता। मैंने कहा—काश! मेरी जेब में एक दो रुपये होते तो क्या आश्चर्य था कि मैं बहुत से रुपये बना लेता, मगर मेरी जेब में कुल पौने चार आने थे।

यजदानी और सन्तासिंह बहुत बढिया वस्टेंड के सूट पहिने नेक आलम, क्लब के सेक्रेटरी, से झगड़ रहे थे। नेक आलम कह रहा था कि वह मनोरजन परेल क्लब और 'बार' बनते हुये कभी नही देख सकता। उस समय मैंने एक निराश आदमी के खास अन्दाज मे जेब में हाथ डाला और कहा—"बाल-बच्चों के लिये कुछ खरीदना पाप है। इस हिसाब से परेल खेलने के लिये तो उसे अपनी गिरह से दाम देने चाहिये। ही ही गी गी .।"

भीतरी जेब—बायीं निचली जेब—कोट मे पीछे की ओर मुझे कोई कागज सरकता हुआ मालूम हुआ। उसे सरकाते हुये मैंने दायी जेब के छेद के पास जा निकाला।

—वह दस रुपये का नोट था, जो उस दिन भीतरी जेब की तह के छेद में से होकर कोट के अन्दर ही अन्दर गुम हो गया था!

× × ×

उस दिन मैंने प्रकृति से बदला लिया। मै उसकी इच्छा के अनुसार परेल-वरेल न खेला। नोट को मुट्ठी में दबाये घर की ओर भागा। अगर उस दिन मेरा इन्तजार किये बिना शम्मी ने वह काफूरी सूट बदल दिया होता, तो मै खुशी मे यों पागल कभी न होता।

हाँ, फिर चलने लगा, वही खयाली दौर। मानो एक सुन्दर से सुन्दर ससार के निर्माण में दस रुपये से ऊपर एक दमडी भी खर्च नही होती।

जब मै बहुत-सी चीजों की सूची बना रहा था, शम्मी ने मेरे हाथ से कागज छीन कर पुर्जे-पुर्जे कर दिया और बोली—

'इतने किले मत बनाइये फिर नोट को नजर लग जायगी।"

"शम्मी ठीक कहती है।" मैंने सोचते हुये कहा—"न कल्पना इतनी रगीन हो और उसके पूर्ण न होने से इतना दुःख पहुँचे।"

फिर मैंने कहा—"एक बात है शम्मी ! मुझे डर है कि नोट फिर कहीं मुझसे खो न जाय तुम्हारी खेमू (पड़ोसन) बाजार जा रही है। उसके साथ जाकर तुम ये सब चीजें खुद ही खरीद लाओ . काफूरी मीनाकारी काँटे. डी० एम० सी० के गोले, मगजी और देखो, पोपी मुन्ना के लिये गुलाब-जामुन जरूर लाना ..जरूर . "

शम्मी ने खेमू के साथ जाना स्वीकार कर लिया। और उस दिन शम्मी ने एक कश्मीरे का एक बहुत बढ़िया सूट पहिना।

बच्चों के शोर-गोगा से मेरी तबीअत बहुत घबराती है। मगर उस दिन मैं देर तक बच्चू और नन्हे को उसकी माँ की अनुपस्थिति मे बहलाता रहा। वह रसोई-घर से ईंधन की कोठरी, गुसलखाने, छत पर—सब जगह उसे खोजता फिरा, मैंने उसे पुचकारते हुये कहा—

"वह ट्राइसिकल लेने गई है नहीं जाने दो। ट्राइसिकल गन्दी चीज होती है, आक थू .गुब्बारा लायगी, बीबी तुम्हारे लिये, बहुत सुन्दर गुब्बारा . "

'बच्चू बेटी' ने मेरे सामने थूक दिया। बोली—"ए...ई . गन्डी।"

मैंने कहा—"कोई देखे तो ..कैसा बेटियों जैसा बेटा है।"

पुष्पामणि को मैंने गोद में ले लिया और कहा—"पोपी मुन्ना . आज गुलाब-जामुन जी भर के खायगा न ?"

उसके मुँह मे पानी भर आया। वह गोदी से उतर पड़ी, बोली—"ऐसा मालूम होता है, जैसे एक बड़ा-सा गुलाब-जामुन खा रही हूँ।"

बच्चू रोता रहा। पुष्पामणि बरामदे मे नाचती रही।

मुझे मेरी कल्पना की उड़ान से कौन रोक सकता था। कहीं मेरे काल्पनिक किले जमीन पर न आ रहे, इसी डर से तो मैंने शम्मी को बाजार भेजा था। मैं सोच रहा था—शम्मी अब घोडा-अस्पताल के

पास पहुँच चुकी होगी...अब कालेज रोड के नुक्कड़ पर होगी अब गन्दे इञ्जन के पास .

और एक धीमे से स्वर के साथ ज़जीर हिली।

शम्मी सचमुच आ गई थी, दरवाजे पर।

शम्मी अन्दर आते हुये बोली—"मैंने दो रुपये खेमू से उधार लेकर भी खर्च कर डाले हैं।"

"कोई बात नही।" मैंने कहा।

फिर बच्चू, पोपी मुन्ना, और मैं तीनों शम्मी के आगे-पीछे घूमने लगे।

मगर शम्मी के हाथ में एक बडल के सिवा कुछ न था। उसने मेज पर बंडल खोला—

—यह मेरे कोट के लिये बहुत बढ़िया वर्स्टेड था! पुष्पामणि ने कहा—"बीबी, मेरे लिये गुलाब-जामुन..."

शम्मी ने जोर से एक चपत उसके मुँह पर लगा दी।

उसकी .खुशी

लेखक . श्री कृष्णचन्द्र, एम० ए०

सिल के वार्ड में क्लॉक ने बारह बजाये ।

जग्गू ने अपने बिस्तर पर करवट ली और आहिस्ता से कहा—"सो गये अमजद ?"

अमजद के जर्द चेहरे पर दो बड़ी-बड़ी आँखे खुलीं, उसके पतले और सूखे अधर काँपे और दाहिने कपोल का बड़ा-सा तिल स्याही का एक बड़ा धब्बा मालूम होने लगा। और आहिस्ता से कहा—"नहीं कुछ सोच रहा हूँ।"

"क्या सोच रहे हो, अमजद ?"

"यही कुछ अपने समाप्त होते हुए जीवन के सम्बन्ध मे।"

"यानी अपनी मृत्यु के सम्बन्ध मे ?"

"नही, अपने समाप्त होते हुए जीवन के सम्बन्ध मे !" अमजद ने अनुरोध किया।

"मृत्यु तो जीवन में आती है, और जब जीवन ही समाप्त हो जाय तो मृत्यु कहाँ ?"

"मैं कहता हूँ अमजद, कि आखिर हम पैदा ही क्यों हुये ? मेरा मतलब है कि मेरा जीवन इतना निकम्मा और निरर्थक रहा कि कभी तो मुझे अपने बनाने वाले पर हँसी आती है ..क्या तुम्हे भी आती है अमजद.. कभी . कभी . ?"

जग्गू एक लम्बे अरसे तक प्रतीक्षा करता रहा, आज उसे तेज ज्वर था, उसका मस्तक जल रहा था। उसे अपने कपोलों के गढों मे अगारे से भरे प्रतीत होते थे। एकाएक वह खाँसने लगा और एक दो मिनट तक लगातार खाँसता रहा। खाँसी ने उसके फेफड़ों को छलनी बना दिया था।

जब उसकी खाँसी बन्द हुई तो अमजद ने उसके प्रश्न का उत्तर दिया।

"नहीं, कभी नहीं, मुझे तुम्हारे बनाने वाले पर विश्वास नही। . हँसी आये और ."

वह स्तब्ध हो गया।

एक लम्बे अरसे के बाद जग्गू ने कहा—"क्या सोच रहे हो, अमजद?"

अमजद ने कहा—"मेरे जीवन के तार कब के टूट चुके है, परन्तु आज कई भूली-बिसरी बातें फिर सता रही है। आज न जाने इन टूटे हुये तारो को फिर क्यों इकट्ठा कर रहा हूँ?"

फिर कुछ देर चुप रह कर अमजद ने कहा—"तुम्हें आज की तारीख याद होगी?"

जग्गू ने कहा—"हाँ, १३ नवम्बर।"

अमजद ने धीमी आवाज से कहा—"आज के दिन मेरा विवाह हुआ था, इस बात को दस साल बीत चुके है।"

जग्गू और अमजद देर तक बाहर फैली हुई चाँदनी को देखते रहे। वार्ड के बाहर हरी घास के मैदान और फूलों की क्यारियाँ थीं और उनके पार अस्पताल की दीवार के साथ लगे हुये पीपल की एक टहनी पर चन्द्रमा अपनी ठोढी रक्खे कुछ सोच रहा था। जग्गू की आँखो में आँसू भर आये। उसने दीन वाणी में कहा—"मुझे आज तक किसी स्त्री ने प्यार नहीं किया।"

फीकी चाँदनी फीके और उदास फूलों पर बरसती रही, और क्लॉक की टिक-टिक रात के सन्नाटों में कीलें गढती गई—टिक-टिक .

आज जग्गू का ज्वर तेज था। उसने ज़रा ऊँची आवाज़ मे कहा—"मैने कुछ भी तो नहीं देखा, मैट्रिक पास करने के बाद जब मैं नौकरी की खोज में जालन्धर गया तो उस रात मास्टर ऊधमसिंह का लैक्चर था। मैं तो सारे व्याख्यान के दौरान में रोता ही रहा। किसानों की करुण दशा का जो नक्शा उसने खींचा वह बिलकुल मेरी हालत से मिलता था, और जब उसने भारत की दासता का वर्णन किया, तो मेरा खून खौलने लगा ..उस समय मेरी आयु सोलह वर्ष की थी। दूसरे दिन मैं गिरफ़्तार कर लिया गया, मैंने नमक का क़ानून भङ्ग किया था। जेल में मुझ से पुराने अपराधियों का-सा व्यवहार किया गया। दो साल तक मुझे सिर्फ चने और बाजरे की रोटी, जिसमें भूसी मिली हुई थी, दी गई और गन्दा पानी। गर्मियों मे वह तपन कि 'ब्लैक होल'

को भी लज्जा आय ! सर्दियों में वह शीत कि फर्श पर रक्त तक जम कर रह जाय। इन दो सालों में हँसी मेरे चेहरे से दूर हो गई और उसकी जगह खाँसी ने ले ली। पहले साधारण-सी खाँसी थी . "

अमजद ने कहा—"पहले तो साधारण-सी ही होती है।"

"फिर कभी-कभी ज्वर—"

"फिर खाँसी के साथ खून भी।" अमजद बोला।

जग्गू ने कहा—"मैंने दो बार भूख-हड़ताल की और उन्होंने मेरी नाक द्वारा खाना अन्दर पहुँचाया, जिससे मेरी नाक में जख्म पैदा हो गये और फेफड़ों में सूजन—"

अमजद ने उदास लहजे में कहा—"इन बातों को दोहराने से क्या लाभ ? हम तुम अपने देश के सैनिक हैं, हम वे सिपाही हैं, जो खन्दकों की रक्षा करते-करते मर जाते हैं, जिनके कलेजे शत्रुओं की गोलियों से छलनी हो जाते हैं, जिनकी आँतें रण-क्षेत्र में लोहे के तारों में उलझी रह जाती हैं। हम तुम गुमनाम सिपाही हैं—क्यों ठीक है न ?"

परन्तु चन्द्रमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह आहिस्ता से पीपल के पत्तों की घनी ओट में चला गया।

जग्गू ने पूछा—"ऐसा क्यों हो ? एक बार जेल में मेरा जी गन्ना चूसने को चाहा, और मेरी आँखों में खेतों का चित्र फिर गया। मैंने देखा, ईख के खेत तैयार हैं—ईख काट कर गट्ठे बनाये जा रहे हैं। मेरे पिता बैलगाड़ी में बैल जोत रहे हैं—और मेरी माँ ईख के गट्ठे उठा-उठा कर बैलगाड़ी पर रख रही है। . फिर मैंने देखा कि कोल्हू में गन्ने का रस निकाला जा रहा है और एक चमकते हुये अलाव पर कढाई में ताजा और नया और सोने-जैसा पीला गुड़ तैयार हो रहा है। और मैं बेबस हो गया, मैंने वार्डर के आगे हाथ जोडे और उससे कहा, 'मुझे कहीं से थोड़ा-सा गुड़ ला दो।' उसने मेरी पीठ पर एक लात जमाई—शायद मैं गरीब था इसलिये। उसी जेल मे हमारे कई साथी थे—हमारे पथ-प्रदर्शक ! वार्डर उनसे पैसे लेता था, और उन्हें सब कुछ ला देता था। डाक्टर भी उनसे हँस कर पेश आता था और वह तीन-तीन महीने अस्पताल में रह कर मोटे हो जाते थे—और फिर पुस्तकें और अखबार, और नहाने के लिए विलायती ढग के टब और स्पज। मास्टर ऊधमसिंह को मैंने देखा, हर रोज सदल सोप से नहाता था और मुझसे बात भी न करता था। सुना है, वह एक-दो बैंकों का मालिक भी है।"

अमजद ने कहा—"वास्तव में हमारा पथ-प्रदर्शन यह बैंक ही तो करते हैं। यह प्रदर्शक लोग तो बस चिल्लाते हैं, जैसे तुम इस समय चिल्ला रहे हो। यदि इस समय नर्स आ जाय, तो क्या कहे?"

"क्या कहेगी?" जग्गू ने कहा—"अब मैं किसी से डरता थोड़े ही हूँ। हाँ, पहले-पहल जब मैं जीवित रहना चाहता था, तब नर्सों और डाक्टरों की खुशामद किया करता था, 'परमेश्वर के लिये मुझे किसी सैनिटोरियम में भेज दो!' करनल मुझे छः महीने तक टालता रहा कि अब किसी सैनिटोरियम में कोई 'बेड' खाली हुआ तो वह पहले मुझे भेजेगा—क्या उन छः महीनों में किसी सैनिटोरियम मे कोई 'बेड' खाली नहीं हुआ? कोई भाग्यशाली नहीं मरा? यह विश्वास मैं कैसे कर सकता हूँ? परन्तु उन छः महीनों के बाद मैंने करनल से कहा, 'अब मैं किसी सैनिटोरियम में जाना नहीं चाहता, अब यही 'बेड' मेरे लिये काफी होगा।' इस अरसे मे मेरा ज्वर तेज हो गया था और मेरी खाँसी बढ गई थी। दोनों फेफड़ों को सिल के कीटाणुओं ने छलनी कर दिया था—और फिर तुम आ गये। तुम यहाँ क्यों आ गये? मेरा तो यहाँ कोई न था। मेरी रिहाई के कई महीने पहले मेरे माता-पिता प्लेग से मर चुके थे। उन्होंने जमीन गिर्वी रख कर मुझे मैट्रिक पास कराया था। उनके इकलौते बेटे ने उन्हे कितना अच्छा बदला दिया!"

जग्गू सिसकियाँ लेने लगा, अमजद ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखे बन्द कर लीं।

थोड़ी देर बाद अमजद ने कहा—"तुम किसान के बेटे थे, अपने देश के लिये मर मिटे, इसमे रोने की क्या बात है। आज तुम्हारे बलिदान के बल पर तुम्हारे ही भाई यहाँ राज करते रहे हैं। तुम्हे इस पर गर्व होना चाहिये।"

और जग्गू बहुत देर तक खाँसता रहा, आहिस्ता-आहिस्ता जैसे उसका दम निकल रहा हो। फिर अमजद खाँसने लगा, लेकिन उसके फेफड़ों मे अभी जान बाकी थी, इसलिये उसने जल्दी ही अपनी खाँसी पर अधिकार पा लिया।

अमजद ने कहा—"डाक्टर मुझसे कह रहा था कि मेरा दूसरा फेफड़ा अभी सिल के कीटाणुओं का शिकार नहीं हुआ है, और अब वह मुझे किसी सैनिटोरियम मे भेजने का विचार कर रहा है।"

जग्गू ने कड़वे लहजे मे कहा—"इस जीवन मे यह असम्भव है!"

अमजद ने उदास होकर कहा—"न सही, मैं भी इस जीवन को समाप्त कर देना चाहता हूँ।

जग्गू बोला—"अमजद, तुम मुझे चिढाया न करो! क्या हुआ यदि मैं एक किसान का बेटा हूँ, तुम्हारी तरह कवि नहीं तो न सही, लेकिन आखिर मैंने भी गाँव-गाँव की खाक छानी है, घाट-घाट का पानी पिया है। प्रान्तीय लीडरों से लेकर बडे से बडे हिन्दुस्तानी लीडरों के व्याख्यान सुने हैं, तीन बार जेल गया हूँ। मैं कोई बच्चा तो नहीं हूँ। मैंने आज तक कोई ऐसा मनुष्य नहीं देखा, जिसे अपने जीवन से प्रेम न हो, जिसे इस दुनिया के नीले आकाश, धरती की सोंधी सुगन्ध और तरुणी के इठलाते हुये यौवन से अनुराग न हो—कोई भी इस जीवन को समाप्त करना नहीं चाहता। स्वय मैं भी, जिसके पास मुट्ठी भर हड्डियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं, एक जोंक की तरह जीवन से चिपका हुआ हूँ, और तुम हो कि मरना चाहते हो!"

अकस्मात् वह चुप हो गया। धीमे-धीमे पगों से नर्स लूसी उसके बिस्तर के समीप आ रही थी। तरुणी और सुन्दरी लूसी! वह उसके सुन्दर अधरों को देख कर पागल हो जाता था, उसकी सारी आयु जेलों में चक्की पीसने और जेलों से बाहर डोलों से बदतर देहातों में लेक्चर देते गुजरी थी, जलसों में वालटियरों का काम करते और देश के नाम पर चन्दे माँगते। उसे जेल जाने और अपने देश के लिये फाके करने का अफसोस न था लेकिन काश, उसे यह क्षय रोग तो न होता। काश, वह स्वस्थ होता और सुन्दरी लूसी के ओठ चूम सकता! वह सिर से पाँव तक काँपने लगा। उसके बीमार खून में एक वहशी रोग का तूफान लहरें मारने लगा। उसके कानों मे बिजलियाँ कड़कने लगीं, और उसके कपोलों के स्याह गढों में चिनगारियाँ लपकने लगीं। काश, कोई उसे आज की रात, केवल एक रात के लिये सच्ची तन्दुरुस्ती और स्वच्छ पवित्र यौवन का उत्साह दे देता! नर्स ने अपना हाथ उसके तपते हुये मस्तक पर रक्खा और नींद से वशीभूत वाणी में कहा—"क्या तुम्हे नींद नहीं आती, जग्गू? सो जाओ, बातें मत करो, सो जाओ प्यारे जग्गू!"

जग्गू ने अपने काँपते हुये हाथ से नर्स की कलाई पकड़ ली। कुछ क्षणों तक उसका पतला सूखा हाथ नर्स की कलाई पर रहा, फिर आहिस्ता-आहिस्ता तकिये पर गिर गया।

उसने नर्स से पूछा—"आज मेरा बुखार बहुत तेज है ?"

नर्स ने थर्मामीटर लगा कर टेम्परेचर देखा, बुखार तेज़ था। नर्स ने उसे एक नीद लाने वाली दवा पिलाई और उसे सो जाने को कहा, और वह आहिस्ता-आहिस्ता मटकती हुई, निद्रा में चूर, झूमती हुई चली गई। जग्गू और अमजद बहुत देर तक उसे देखते रहे, यहाँ तक कि वह दृष्टि से ओझल हो गई। दो मरीज वार्ड के पश्चिमी सिरे पर खाँसने लगे। जग्गू और अमजद की छातियाँ भी दुखने लगी थीं, वे भी खाँसने लगे। तीन-चार और मरीजो ने भी, जो सो रहे थे, जाग कर खाँसना शुरू कर दिया। और थोडी देर तक वार्ड की चहारदीवारी बीमारों की खाँसी से परिपूर्ण रही, फिर कुछ देर बाद नीरवता छा गई।

अमजद ने पूछा—"जग्गू, नींद आ रही है ?"

जग्गू बोला—"नही, मैं सोच रहा हूँ, मेरी एक अभिलाषा ही पूरी हो जाती, अपने देश को स्वतत्र देख लेता, तो चैन से मरता। अब सोचता हूँ कि काश, मैं एक बार किसी से प्रेम कर लेता और अपनी प्रियतमा को बाँहों में लिपटा लेता।"

अमजद ने आहिस्ता से कहा—"सच है, जब मनुष्य की बड़ी-बड़ी अभिलाषायें पूरी नहीं होतीं, तो वह इनका प्रतिकार इसी तरह तलाश करता है।—मैंने अकसर देखा है कि जब देश मे आजादी की लडाई तेजी पर हो, तो जातीय फिसाद दब जाते—जेल में भी मैंने इस तरह कई बार इन बडे-बडे लीडरों को, जिन्होंने हर तरह का आमोद-प्रमोद त्यागकर इस सेवा-मार्ग पर चलना शुरू किया था, शक्कर की एक डली पर झगड़ते देखा है—एक बार क्या हुआ कि जब मैं गुजरात जेल में था, तो एक बडे लीडर ने बाहर से अचार मँगाया और वार्डर ने उस अचार को कागज मे लपेट कर पाखाने की मोरी के रास्ते हमारे कमरे में दाखिल किया। लेकिन मैं क्या बताऊँ कि उस अचार के लिये कैसी-कैसी लडाइयाँ लड़ी गईं, और हिन्दू, मुसलमान, सिख, हर धर्म के लीडरों ने उसे बडे चाव से खाया—और आज तुम जो वास्तव मे देश के मार्ग में रक्त के छींटें उडा चुके हो, एक स्त्री के ओठों के प्यासे नजर आते हो—कहाँ स्वतन्त्रता और कहाँ स्त्री के ओठ . मैं स्त्री के ओठों का मजा खूब जानता हूँ—"

"क्या हुआ तुम्हे ?" जग्गू ने धीमी आवाज से कहा—"क्या तुम्हें

स्त्री के ओठ पसन्द नहीं आये ? कैसे आदमी हो तुम ! तुम्हे किस मूर्ख ने कवि बना दिया—"अमजद ने व्यग्य से कहा—"तुम्हारे बनाने वाले ने—"

जग्गू तद्रामय लहजे में बोला—"अभी-अभी मैंने नर्स की कलाई हाथ मे ली थी। राम जाने, अभी तक मैं उसकी ठढक और रेशम की सी कोमलता को नहीं भूल सका हूँ।"

अमजद ने अनमना होकर कहा—"मुझे इन भावनाओं की कदर मालूम है—इन्हीं भावनाओं ने तो मुझे कवि बना दिया था। इन्ही भावनाओं ने तो मुझे रजिया से विवाह करने पर मजबूर किया था। आज के ही दिन मेरा विवाह हुआ था—तेरह नवम्बर को। तेरह तारीख, सुना है, बहुत अशुभ होती है, परन्तु उसी दिन मुझसे अधिक भाग्यशाली और कौन होगा। उस दिन इसी तरह चाँदनी थी। चीड़ के पत्तों के नुकीले झूमरों मे जगल की हवा मद स्वर में मृदुल गीत गा रही थी, और उस सुहावनी रात मे मैंने और रजिया ने एक दूसरे की बाँहो मे बाँहे डाल कर वे मृदुल गीत सुने थे—"

जग्गू की साँस तेज हो गई, उसने पूछा—"फिर क्या हुआ ?"

अमजद ने कहा—"रजिया को मैंने बडी मेहनत से पाया था। वह मेरे एक सरदार की लड़की थी। मैं एक अँगरेज के बैरे का बेटा था ..कमीना और नीच, परन्तु मेरे बाप ने मुझे एफ० ए० तक की शिक्षा दी थी और हमारे कबीले मे मुझ से अधिक पढा-लिखा दूसरा कोई न था—रजिया को मैंने बड़ी मुश्किल से पाया था और आज के दिन मेरी और उसकी इच्छाये पूरी हुई थीं।"

अमजद देर तक चुप रहा, और जग्गू का दिल जोर-जोर से धड़कता रहा। आखिर अमजद ने कहा—"लेकिन स्त्री के ओठ मुझे देश-सेवा करने से न रोक सके। अँगरेज के बैरे के बेटे ने विद्रोह का झडा खड़ा किया और उसे पाँच साल की कैद हुई। रजिया के बाप ने, जो मरी का एक सरदार था, अपनी बेटी से बात तक नहीं की और मेरा बाप जेल मे एक बार भी मुझ से मिलने नहीं आया, क्योंकि वह अँगरेज का बैरा था, परन्तु रजिया तीन साल तक जेल के दरवाजे पर आती रही और उसके रसीले ओठ नीरस होते गये, क्योंकि खूबसूरती रोटी से पैदा होती है और जब रोटी नहीं मिलती, तो खूबसूरती मर जाती है।"

"अमजद ! अमजद !" जग्गू ने त्रस्त स्वर में कहा ।

"लेकिन रजिया ने अपने सौन्दर्य को मरने न दिया"—अमजद ने उसी लहजे मे कहा—"ख्वाजा करीमउद्दीन को तुम जानते हो न ?"

"कौन ख्वाजा करीममुद्दीन—वही जो बडे जमींदार हैं और सन् पैंतीस से देश सेवा में भाग लेने लगे हैं ?"

"हाँ-हाँ वही, वे हमारे साथ जेल मे थे । तीन साल तक हम इकट्ठे रहे, क्योंकि उन्हे तीन ही साल की सजा हुई थी । जब वे रिहा होने पर आये, तो मैंने डब-डबाई हुई आँखों से उनसे रजिया की मदद करने को कहा । उन्होंने रजिया की बहुत मदद की. रजिया अब भी बहुत सुन्दर है ।"

जग्गू ने अमजद की ओर देखा, लेकिन अमजद ने आँखे बन्द कर ली थीं और वह कुछ न देख सका ।

आखिर जग्गू ने बहुत देर के बाद कहा—"अमजद भाई, हम में बड़े-बडे लीडर हैं, देश के नाम पर मिट जाने वाले अहरार भी, फिर भी स्वतन्त्रता समीप नहीं आती ! क्यों ? इसलिए कि सचाई का ढिंढोरा पीटते हुये भी हमारे दिलों में सचाई नहीं, निगाहों में पवित्रता नहीं, साथियों के लिये प्रेम नहीं !"

अमजद ने कहा—"लेकिन अब तो मुझे किसी से अदावत नहीं, न तुम्हारे बनाने वाले से, न ख्वाजा करीमउद्दीन से—रजिया से भी नहीं ! अच्छा है कि अब किसी के दिल मे हमारी याद नहीं, चाह नहीं, सम्मान नहीं—"

परन्तु थोडी देर बाद उसके सन्तोष के बॅद टूट गये और वह अत्यन्त धीमी, शोकभरी वाणी में बोला—"लेकिन मेरे खुदा, मैं आज की रात को नही भूल सकता ! आज की ही रात को तो मेरे अरमानों की दुनिया आबाद हुई थी, आज की ही रात तो मैंने खुशियों का मुँह देखा था । यही चॉदनी रात थी, यही रात का सन्नाटा, चीड़ के वृक्ष—फिर रात का सन्नाटा बढता गया, चॉदनी फैलती गई, अनसुने रागों की नीरवता तन्द्रा की गहराइयों में उतरती गई—समय का शोर थम गया, और जीवन की हर धडकन लावण्य की प्रकाशमान सरिता मे बहती हुई आप ही आप कहीं चली गई—खुदा जाने—कहाँ—और किधर—"

तौबा मेरी

लेखक : जनाब अहमद नदीम क़ासिमी, बी० ए०

"खों . खों—ए खों . खों, तौबा मेरी, खों .खों। जरा बाहर आना बुढिया . बु ..बुढिया ! वह लुटिया इधर सरका दे री। तौबा मेरी खो . खों . खों। करीम तो अब अच्छा है ? तू किधर जाकर मर गई है, तौबा मेरी।"

चूने की-सी सफेद दाढी, गञ्जा सिर, लटकी हुई नाक, अन्दर घुसे हुये ओठ, सिलवटे पड़ा चेहरा। मानो कोई लाश बैठी खाँस रही हो ! देहलीज के बाहर एक खटोले पर बैठा, फेफड़ों के सिमटने-फैलने के झटकों से, घुटनो मे सिर दिये झुक-झुक जाता था। पास की दीवार बलगम से पटी पड़ी थी। दो बैल दूर खडे, सूखे तिनकों पर मुँह मार रहे थे। उस पार पनिहारियाँ पानी भरी गागरों से लदी मटकती हुई एक गली मे घुसी जा रही थी।

कुबडी बुढिया अन्दर से हाँफती हुई निकली—"अरे, क्या शोर मचा रक्खा है तूने, घड़ी भर के लिए अन्दर जाती हूँ, कि तुझे गोली लग जाती है। हाथ बढा कर लुटिया खसका ली होती।"

बूढा खाँसते हुए बोला—"ए, इतना गुस्सा न दिखा ! घूँट भर पानी पिला दे, मेरा गला सूख रहा है।"

"तुझे क्या मालूम, कि अन्दर तेरे लाल पर क्या बीत रही है ? साँस लेना भी कठिन है उसे। अब फिर फटी-फटी आँखों से देखने लगा है। हाथ-पैर पटकता है और बेमतलब ऊट-पटाँग बाते करता है। एक बार तो पथरा गई थी उसकी आँखे।"

बूढे ने लुटिया लेकर वही धर दी और खटोले पर से अपनी सूखी लकड़ी जैसी टाँगें लटका कर बोला—"ले, जरा मुझे थाम के ले चल। मैं समझा मौसिमी बुखार है, उतर जायगा, तूने तो बड़ी बहकी बात कर दी. कलेजा दहला दिया मेरा। ले, जरा थाम मेरा हाथ, खींच मुझे, तौबा मेरी।"

खसकते हुये दोनों अन्दर गये। फटे-पुराने बिस्तर पर एक नवयुवक पड़ा कराह रहा था। गरदन को इस व्याकुलता से हिला रहा था, जैसे उसके सिर मे लपटें उठ रही हों। पाँव इस प्रकार पटकता था, मानो तपते लोहे पर चला रहा हो। ओठ ऊपर चढ गये थे। बत्तीस के बत्तीस पीले दाँत मसूढो सहित दिखाई पड रहे थे।

बूढा उसकी खाट के पास पहुँच कर क़रीब-करीब गिर पड़ा। "ऐ करीम खाँ, करीम बेटा, बेटा करीम, ऐ करीमू, ऐ, बात तो सुन मेरी! सुन रहा है, क्या? खों ..खों खो ऐ . ऐ तौबा मेरी ऐ सुनता है कुछ, तेरा बूढा बाप तेरे सामने बैठा है। क्या खायगा? पानी पियेगा? . पियास है? नहीं है? तौबा मेरी . अरी देख, सिर हिला रहा है तेरा लाल प्यास नहीं है इसे। क्या खायगा? सुबह वाली खिचड़ी गर्म कर ला बुढिया। ऐ, सुनती है। करीम बेटा! तुम बोलते क्यों नहीं? तौबा . "

करीम की व्याकुल लाल आँखें बूढ़े के पीले चेहरे पर जम गई और पपड़ियों जमे ओठों में जरा-सी जुम्बिश हुई। उसने धीरे से कहा—"मेरे दिल पर बहुत बोझ है। अब्बा! मैं बहुत परेशान हूँ।"

"यह बुखार कमबख्त इसी तेजी से चढता है और उतरता भी पल में है—बस चुटकी बजाते।" बूढे ने अपनी कमजोर भद्दी अँगुलियों से चुटकी बजाना चाहा, किन्तु असफल रहा।

नवयुवक फिर उसी क्षण और करुण स्वर में बोला—"कल मौलवी साहब कह रहे थे कि मैंने बूढे नीम के नीचे पेशाब कर दिया, इसलिये पुरानी डायन मेरा कलेजा निकाल कर खा गई। कलेजे वाली जगह मुझे खाली जान भी पडती है।"—कहते हुए उसने छाती पर हाथ फेरा।

बूढा भी दहल गया। मगर ढाढस देते हुये बोला—"आज इसी लिये तो बहुत-सी घुघरियाँ बाँटी थीं तुम्हारी अम्माँ ने, मुट्ठी-मुट्ठी भर मासूम बच्चों को देती गई, और वे तुम्हारे अच्छे होने के लिये दुआएँ माँगते रहे। शक्कर मिला कर मौलवी साहब के यहाँ भी भिजवा दी थीं और कोरे बरतन मे डाल कर बुढिया नीम-तले भी बिखेर आई थी। अब तू अच्छा हो जायगा। ले आई खिचड़ी?" बूढे ने हाथ टेक, मुडते हुये कहा—"रख दे इधर, उठा अपने लाल को, खा ले मेरे बच्चे, दो-चार दाने निगल ले, ताकत आ जायगी, परेशानी मिट जायगी। न

खाय तो वहीं हँडिया में डाल आ री, बाहर रहने से ख़राब हो जायगी, शाम को काम आयगी। बच्चे को सोने की कोशिश ..खों ..खों-खों-खों आख़ आख़ . आख़ .थू।"

बूढा जमीन पर झुक गया और फिर दोनों आँखे कपड़े से रगड़ते हुए बोला—"तौबा मेरी।"

कुबड़ी बुढ़िया हाँफती हुई आई और बच्चे के सिरहाने बैठ कर उसके माथे को धीरे-धीरे सहलाने लगी। बूढा खाट के एक बाजू पर कोहनियाँ धरे करीम की उभड़ती और बैठी छाती को टकटकी बाँधे घूरने लगा। करीम अब इतना व्याकुल न दीखता था। बुढिया धीरे-धीरे फटी-फटी आवाज मे गुनगुनाने लगी—"अलहमदी लिल्लाहे रब्बिल आलमीन "

बूढ़े के ओठ हिलने लगे और आँखों में पानी भर आया, फिर एक साथ दोनों ने करीम के माथे पर 'छू' की। करीम की आँखे खुल गई और बूढा प्रसन्नता से काँपने लगा, जैसे उसने अपने लाल को अमृत का एक मटका पिला दिया हो।

करीम की आँख लग गई। बुढ़िया धीरे से उठ कर देहलीज़ पर आ बैठी, बूढा पीछे खसकता हुआ दीवाल से लग कर ऊँघने लगा।

(२)

दो साल से बूढा कोई काम नहीं कर सकता था, तभी से उसका नौजवान लड़का छकडा चलाता था, गाँव से कस्बे तक उसे चवन्नी मिल जाती थी। और फिर हफ्ते मे दो-तीन बार तो कस्बे के सेठ उसे जरूर बुला लेते थे। महीने भर मे बूढ़े माता-पिता को करीम के विवाह की चिन्ता हो गई थी, इसलिए खाने के बजाय बचाने में उन्हे मजा आने लगा। माँ-बाप का यह नया शौक देख कर करीम भी लम्बी-लम्बी यात्रा पर जाने के लिये तैयार हो जाता। बुढिया परसों गिरती-पड़ती गाँव की एक लड़की के विषय मे बात भी कर आई थी, और उसे लड़की की माँ और दूसरे सम्बन्धियों की बातों से बहुत कुछ आशा भी बँध गई थी। क्योंकि जब वह वापस आई, और बूढ ने उसका हाथ पकड़ कर पूछा—"ले अब बता भी, मुँह उठाये किधर भागी जा रही है?"

बुढिया थूक निगलते हुये बोली—"मैं दो नफल शुकराने के पढ लूँ, फिर बताऊँगी सारा हाल।"

बूढे को प्रसन्नता के आवेग मे खाँसी आने लगी, और वह जमीन पर ज़ोर-ज़ोर से थूकते हुये बोला—"तौबा मेरी, ऐ तौबा . शुक्र है . मेरे मालिक.. आख-थू ! शुक्र है, तौबा मेरी।"

× × ×

कल शाम से करीम को बुखार आ रहा था। सारे गाँव में यह रोग फैला हुआ था। हर घर से बनफशे के काढे की बू आती थी, और लोगों को चाय की चुटकियाँ देते-देते जिलेदार तग आ गया था। दूकानदारों ने सौंफ और गुलकन्द का भाव चढा दिया था। बूढ़े ने भी पुराने मैले चिथड़ों में बँधी हुई जड़ी-बूटियों को खोल कर फक्की बनाई और करीम को खिला दी। मगर उसको ऐसा ज्वर चढा था कि उसका शरीर गरम तवे की तरह जल रहा था। पहले तो पागल हो गये दोनों। बेमतलब एक जगह से दूसरी जगह गिरते-पड़ते रेंगने लगते और बड़बड़ाते जाते—"अब क्या किया जाय, अब क्या होगा ? नाड़ी कैसी चल रही है ? साँस कैसी आ रही है ? माथे पर पसीना आ गया क्या ? पाँव ठढे हो गये ? जी मतला रहा है उसका ? अब क्या होगा ?"

आधी रात को करीम का बुखार हलका हुआ, तो जान में जान आई। मगर नींद न आई। बूढा खाँसते-खाँसते बेहाल हो गया। किसी ने अचानक जोर से दरवाजा खटखटाया। करीम की आँख लग रही थी, भड़क कर उठ बैठा और फटी-फटी आँखों से सामने घूरने लगा। बूढा चिल्ला कर बोला—"ऐ, कौन है इस वक्त ? क्या काम है ? दहला दिया मेरे बच्चे को।"

बाहर से एक कडी आवाज आई—"ऐ बूढे, मलिकजी कह रहे हैं, आज सोओगे भी या यों ही खाँसते-खखारते रहोगे ? तेरी खाँसी ने मोहल्ले भर की नींद हराम कर रक्खी है। मलिक जी शाम से करवटें बदल रहे हैं—बूढ़े को कहो, इतनी जोर से न खाँसे।"

"मजाल है हुजूर, मजाल है मरी, खौं-खौं ख-ख (मुँह मे कपडा ठूँस कर) मजाल है, मुझ गुलाम की, ऐ तौबा.. ।"

करीम ने पूछा—"क्या बात है, कौन था ?"

"मलिकजी ने तुम्हारे बारे मे पूछा है।"

करीम ने दो एक बार आँखें झपकाई और बन्द कर लीं।

मलिकजी उनके पड़ोस मे रहते थे। कस्बे मे उनका बहुत बडा कारबार था। ज़रा अहकारी और बदमिज़ाज थे। एक बार साहब

बहादुर दौरे पर थे ! मलिक साहब ने बूढे को बुला कर कहा—"जल्द लगान अदा करो, नहीं तो साहब के सामने तुम्हे पेश कर देंगे।"

बूढ़े ने हाथ जोड़ कर कहा—"बालिश्त भर जमीन पर उगता खाक नहीं, लगान कहाँ से अदा करूँ ?"

लेकिन उन्होंने यही रट लगा रक्खी कि साहब बहादुर के सामने पेश करूँगा। वह हवालात मे बन्द करके निकाल लेंगे पैसे, तेरी गडी हुई तिजोरी से। सरकार अपनी एक कौडी भी नही छोड सकती, तू तो सठिया गया है। और सचमुच मलिकजी ने साहब बहादुर के सामने बूढ़े-बुढ़िया को पेश कर दिया। साहब बहादुर को भी बूढ़े ने वही जवाब दिया, तो उन्होंने अपनी पतली छडी से बुढिया की बालियाँ छूते हुआ कहा—"वेल, इन्हे बेच डालो, सरकार पैसा नही छोड़ेगी। सरकार का पैसा टुम नहीं रोको। सरकार जेल भेज डेगा ? समझा टुम लोग, ऐ !"

साहब बहादुर ने बुढ़िया की बालियाँ क्या छुईं, बूढे के कलेजे पर अङ्गारा रख दिया। बूढा मछली की तरह तड़प गया। बुढ़िया को इशारा किया। उसने बालियाँ नोच कर साहब बहादुर के पैरों पर डाल दी, और दोनों घर चल दिये।

"बड़ा वाहियात है यह ओल्डमैन !"—साहब बहादुर सिगार को अँगुलियो में घुमाते हुये बोले।

लेकिन बूढ़े के दिल में मानो किसी ने पिघला हुआ शीशा भर दिया था। बल खाता जा रहा था और बड़बड़ाता जा रहा था—"बड़ा आया साहब बहादुर बन कर वहाँ से, गाँव भर के सामने बालियो पर छड़ी फेरने लगा। हाकिम था, नहीं तो कमबख्त की यो गरदन ऐंठता, कि साहब बहादुरी हवा हो जाती। पैसे के खातिर मेरी इज्जत पर हाथ फेरता है, ऊँह !" बुढिया बेचारी ने भी वह रात रोते-रोते बिताई।

मलिकजी ने उस दिन से उस घर से एक दम सम्बन्ध तोड़ लिया था। मगर अब इतनी दया करते थे कि कभी-कभी करीम को बुलाने आ निकलते थे और वह दिन भर सिर पटक कर चवन्नी कमा लाता था।

आज पौ फटे करीम पर ज्वर ने फिर आक्रमण किया। एक बार दर्द की भी शिकायत हुई। मगर बूढ़े की फकी आडे आ गई। दोपहर

को ज्वर जब कुछ हलका हुआ तो बूढा बाहर आ बैठा, मगर बुढिया के कहने पर फिर अन्दर जाना पडा।

अब करीम सो रहा था। बूढा दीवाल का सहारा लेता बुढिया के पास जा बैठा और बोला—"कितनी रक़म हो गई? हँसली बन जायगी। कडे भी तो बनवाने हैं? और सुना है, हमारी बहू सिलवार पहिनती है घेरेदार। कोई अच्छा-सा भडकीला कपडा खरीद ले सिलवर के लिये। जो ये नये-नये कपडे निकले हैं, इन्हीं में से छाँटना। देखो, आँच न आये मेरे लाल की जवानी पर। इसी की कमाई है, इसी पर खर्च हो। तुम्हे दर्द क्या? हमे तो खुशी हैं, हमें दो वक्त के खाने से मतलब है। सो कुछ कमी नहीं, अल्लाह का फजल है।"

बुढिया बोली—"साढ़े बारह रुपये हो गये थे, डेढ रुपये दवा-दारू और घुँघरियों में खर्च हुआ। पाँच आने की शक्कर भी लाई थी। अच्छा होकर और कमा लावेगा मेरा लाल। इधर मलिकजी से कुछ माँगा होता।"

"उलटा जूता दिखलाते हैं मलिकजी, लगान वाली बात याद है?"

बुढिया के कानों की लवें काँप गई, जिनमे खुले छेद मानो पुरानी स्मृतियों को ताजी कराते थे।

कुछ देर बाद बुढिया अन्दर गई और फिर हाथ नचाती बाहर आकर बोली—"उतर गया बुखार! चेहरे पर रौनक आ रही है, अब अच्छा हो जायगा!"

बूढ़ा उकड़ूँ बैठ कर थूकते हुये बोला—"फक्की की करामात का मुझे यकीन था। तीन दिन हुये, नूरे के ऊँट के पेट मे मरोड़ हो रहा था। गुड़ में मिला कर यह फक्की खिलाई तो उठ कर उसी समय भागने और डकराने लगा। बडे-बूढों की चुटकियाँ अक्सीर होती हैं।"

दोनो अन्दर करीम के पास चले गये। करीम अब चारपाई पर उठ कर बैठ गया, और उसकी माँ बहुत देर तक उसकी पीठ और कन्धे सहलाती रही। चिराग जले मलिकजी आ धमके। तीनों के दिल धक से रह गये! बूढ़े ने मुँह मे कपड़ा ठूँस लिया कि खाँस न सके। बुढ़िया परेशानी में हाथ मलने लगी, और करीम चारपाई पर से उठने की चेष्टा करने लगा।

मलिकजी बोले—"क्यो, क्या है? खैरियत तो है?"

"बुख़ार हो गया है इसे।" बुढिया बोली।

"अब कैसा है ?"

"जी, अच्छा हूँ अब तो ।" करीम ने धीमी आवाज में कहा ।

"अब अच्छा है जी ।" बूढा मुँह से कपड़ा निकालते हुए बोला—"अब अच्छा है, नहीं तो हम तो निराश हो बैठे थे । क़ुरान शरीफ के खतम के इरादे कर रहे थे हम तो ।"

मलिकजी बोले—"लडाई की वजह से गेहूँ का भाव चढ़ गया है । मैं आज सौ बोरियाँ कस्बे में भिजवाना चाहता हूँ । करीम अगर आ सके, तो आज रात छः आने मिलेंगे ।"

"तौबा !" बूढा बोला—"यह कैसे जा सकता है जी, यह तो खाट पर से मुश्किल से उठा है ।"

बुढिया बिलबिला उठी—"साँस लेना भी दूभर है इसे । बहुत कमजोर है जी ।"

"मैं अच्छा हूँ ।" करीम बोला—"मैं चलूँगा कस्बे को । किस वक्त चलना होगा ?"

मलिकजी ने कहा—"दूसरे छकडे वाले तो लाद भी चुके है !"

"तो मैं आया ।"

मलिकजी चल दिये । बूढ़े और बुढिया ने करीम की खुशामद की कि इस हालत मे छः आने के लिये ठण्ढी रात मे सफर करना खतरे से खाली नहीं है । करीम ने कहा—"कम्बल ओढ लूँगा ।" आखिर हम लोग जरा-जरा-सी बातों पर यूँ आराम करने लगे, तो पेट कैसे भरेगा ? और हँसलियाँ, कडे और सलवारे कैसे बनेगी ? मै सुबह लौट आऊँगा घर को । चाय भी ले आऊँगा कस्बे से, और जिस चीज की जरूरत होगी ।"

करीम उठा । वृद्ध दम्पति परेशान और चकित उसे देखते रहे । करीम ने कम्बल ओढा, चेहरे पर पगड़ी का एक पल्ला फैला दिया और बाहर आकर छकडे के आगे बैल लगा दिया ।

बूढा बोला—"देख रही है री, शादी की खुशी मे जान की परवाह नहीं करता ।"

"हाँ, कल कह रहा था, मैं कौड़ी-कौड़ी इकट्ठी करूँगा, मगर तुम्हे दम भर के लिये भी किसी का मुहताज न होने दूँगा । उसे अपने व्याह की इतनी फिक्र नहीं, जितनी हमारी फिक्र है ।"

"ऍ, तू क्या जाने ?" बूढा बोला—"तू नहीं जानती, देख वह चल दिया, इलाही ख़ैर !"

"अल्लाह को सौंपा। उफ कितनी सर्दी है !"

"तौबा मेरी !"

छकडों की कतार कच्ची सड़क पर चरचराती हुई चली, तो एक के बाद दूसरे, सब छकडे वाले करीम को कोसने लगे।

"ऐ, बाग (लगाम) हिला नहीं, तो पीछे हट आ, हमें रास्ता तो दे, क्या टख़-टख़ लगाए जा रहा है। सो रहे हैं तेरे बैल। पीछे हट आ।"

इस तरह पीछे हटते-हटते करीम क़तार के आखिरी सिरे पर पहुँच गया। सब छकडे वाले, करीम सहित, बोरियों पर लेटे चले जा रहे थे और अँधेरी रात पहियों की भयानक चीख़ों से गूँज रही थी।

सुबह को दिन चढे मलिकजी क्रोध मे लाल-पीले होकर बूढ़े के पास आये और कहने लगे—"किधर गया वह तुम्हारा लाडला, कहाँ फेंक आया मेरी बोरियाँ ? उसके साथी कस्बे से होकर आ भी गये कब के और वह अभी तक वहाँ नही पहुँचा। घर में तो सब कुछ नहीं डाल गया ?" फिर मलिकजी अन्दर आकर चारपाइयों के नीचे झाँकने लगे—"किधर मर रहा है, वह बदमाश ?"

बूढा काँपते हुए बोला—"वह जी बस, रात को निकला था सब के साथ, फिर वापस नहीं आया अब तक।"

बुढिया बोली—"उसे सौदा खरीदना था कस्बे मे। अभी वापस आ जायगा।"

"मगर मेरी बोरियाँ क्या हुईं ?" मलिकजी जोर से पाँव को फ़र्श पर पटकते हुए गरजते बोले।

सहसा बूढा चिल्ला उठा—"वह रहा हमारा छकड़ा।"

"बोरियों सहित।" बुढिया बोली।

"और बादशाह सलामत सो रहे हैं ऊपर। खुदा जाने कहाँ-कहाँ के चक्कर काट कर आ रहे हैं बैल।" मलिकजी बोले।

लोग छकडे की ओर झपटे। बूढा-बुढिया भी उनके पीछे रेंगते हुए चले।

"ऐ हुजूर आली, ऐ मलिक करीम खाँ, उठो जी!" मलिकजी करीम का लटका हुआ हाथ हिला-हिला कर बोले।

उनका एक नौकर आगे बढा, और करीम के चेहरे से कम्बल खींच कर पुकारा—"ऐ करीमू! उठो भी। ऐसी भी क्या नींद हुई कि "

"ऐ जरा देखना ऊपर चढ कर।" मलिकजी बोले—"क्या हो गया है इसे।"

एक आदमी छकड़े पर चढ गया। करीम की पुतलियाँ ऊपर चढ गई थी और पथराई हुई आँखें हड्डी के पुराने बटनों की तरह निस्तेज थीं।

मलिकजी नाक पर रूमाल फैलाते हुए एक तरफ को होकर बोले—"मर गया है!"

दूर, बूढा बुढिया का हाथ थामे आ रहा था और पुकार रहा था—"ऐ जरा तेज चल! तेरी आवाज से जाग उठेगा। कदम तक नही उठा सकती तू! तौबा मेरी . ।"

आम का फल

लेखक : जनाब सैयद अली अब्बास हुसैनी, एम० ए०

सावन का महीना था। काली-काली घटायें झूम-झूम के उठती और टूट-टूट के बरसती थीं। ठाकुर साहब के आमों के बाग मे टपका लगा था। लड़के-लड़कियाँ इसी ताक में रहते कि रहीमन क़बाड़िये की आँख बचे और आम ले उडे। मगर वह सत्तर-बहत्तर का होने पर भी इतना ठाँठ था कि अपने एक पलिया छप्पर मे बैठा वह डॉट बताता कि लौडों के होश उड जाते और उनको भागते ही बन पड़ता। अगर कोई लड़का किसी तरह उसकी आँख बचा कर एकाध जमीन पर पडे हुए फल को उठा लेने में सफल भी हो जाता, तो कबाडिये का कुत्ता उसकी टाँगे लेता। यह दुष्ट अपने मालिक से भी ज्यादा एक-एक आम की रखवाली करता था। उसने लडका का नाक मे दम कर रक्खा था। गाँव भर मे सब से अच्छे और मीठे आम, और कोई बिना पैसा खर्च किये उन्हे खा न सके, और पैसा माँ-बाप के पास नहीं। किसानों के घर मे दो-चार मन गल्ला तो पडा हो सकता है, मगर नकदी—सफेद मुद्रायें! उनका वहाँ कहाँ ठिकाना? इसीलिये चोरी करने को जी क्यों न चाहे और वह भी ऐसे समय में जब कि सिवाय इस बाग के गाँव में कहीं और आम न रह गया हो? अतएव इन आमो के प्राप्त करने के उपायों पर विचार करने के लिये सभायें होतीं, जलसे किये जाते और प्रस्ताव पास होते। इन फलो को चुरा लाने के लिये बाजियाँ लगतीं और इनाम की घोषणा होती। और कभी-कभी तो दो-चार गिरे-पडे आमों के ला देने पर वह कुछ मिल जाता, जो मजनूँ को जङ्गलों की ख़ाक छानने और फरहाद को पहाड़ की चट्टाने काटने के बाद भी न मिल सका था।

चन्दी जो इस बाग मे एक अँधेरी रात में घुसा था, वह इसी मतलब से। उसके माँ-बाप बचपन मे ही मर चुके थे। बिरादरी वालों ने उसके सारे खेतों पर कब्ज़ा करके उसे इस प्रकार निराश्रय कर दिया था कि वह चोरी करने और डाका डालने का आदी-सा हो गया था।

पहले वह यह कार्य केवल जीवित रहने के लिये करता था, लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया और उसकी बाहों में बल और मस्तिष्क में बुद्धि आती गई, उसके कार्य जबरदस्ती आक्रमण करने का रूप धारण करते गये। वह एक पेशावर लड़ाका, चोर और डाकू बन गया। अभी कुछ दिन पहले वह दफा १०८ में एक वर्ष की सजा काट कर छूटा था, मगर जेल हो आने से उसके दोषो मे और भी दृढ़ता आ गई थी। जेल की अज्ञात कठोरतायें अब डरावनी न रह गई थी। भूखे के लिये गाँव से अधिक जेल में आराम था। इसीलिये अब उसकी दशा उस साँड़ के समान थी, जो दाग कर छोड़ दिया गया हो और जो यह समझने लगा हो कि उसे इसका जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह प्रत्येक हरे-भरे खेत को चर डाले।

मगर आज इस अँधेरी रात और मूसलाधार वर्षा में चन्दी को इस बाग में भूख नही लाई थी। उसका उद्देश्य अपने लिये आम चुराना न था। उसका मतलब इन आमों को अपने मन-मदिर की देवी की भेंट चढाना था। उसने जल्दी-जल्दी अपने अँगोछे के एक कोने में गाँठ लगाई और उसे थैले की भाँति बना लिया। फिर धीरे-धीरे बिल्ली की चाल चल कर उसने दस-बारह आम विभिन्न स्थानों से उठा कर उस थैले में रक्खे। उसने यह काम ऐसी सफाई और सावधानी से किया कि न तो कबाड़िया जागा और न कुत्ते को खबर हुई। फिर वह अपनी भेंट लेकर उस ओर चल दिया जिधर बदलिया रहती थी।

बदलिया उसी की जाति की एक चमारिन थी। अप्रैल मे गौना कराके ससुराल आई और जून मे ठाकुर की बेगार ने उसे दुल्हिन की जगह विधवा बना दिया था। पति को ठीक दोपहरी मे छः कोस शहर तक नगे पैर जाना पड़ा। जिमींदार की आज्ञा मौत की तरह टाली नहीं जा सकती थी। पलटने मे उसे लू लगी और गाँव पहुँचने से पहले ही जलती-भुनती धरती पर गिर कर ठण्ढा हो गया। बदलिया ने माँग का सिंदूर धो डाला, रगीन धोती उतार कर वही फटी-पुरानी धोती पहिन ली, जिसके अतिरिक्त उसके पास तन ढाँकने को और कोई कपड़ा न था और कई जून मारे दुःख के एक दाना तक मुँह मे न डाला। लेकिन उसके इस शोक मनाने से सास-ननँदों का कलेजा ठण्ढा न हुआ। उन्हों उसे डायन, घर-उजाड़न और कलमुँही ठहरा दिया और उसे अपने फूस के महल से निकाल कर बैलों के छप्पर में जगह दी, जिसमें

कि उसकी मनहूस परछाई उनकी पवित्र देहली पर न पडे। यही एक खुरदरी खाट पर बदलिया पड़ी रहती थी। दिन-रात में सास-ननँदों मे से किसी का यदि जी चाहा तो वह उसे थोड़ा सत्तू, मुट्ठी भर चना या थोडी-सी मटर दे जातीं। नहीं तो वह थी, बैल थे, मच्छर थे, गोबर था और थी सडे हुए भूसे की गन्ध।

गाँव की चमर टोली बहुत छोटी-सी जगह होती है। वहाँ एक हृदय के धड़कने की आवाज दूसरे हृदय आसानी से सुन लेते हैं। वहाँ कोई बात भेद बन कर नहीं रह सकती। हर बात फूट निकलती है। दूसरे ही दिन इस 'घर निकाले' और नये दण्ड का समाचार सब को मिल गया।

बडे-बूढे तो सिर हिला कर चुप रहे, लेकिन लड़कों और नवयुवकों मे सहानुभूति की एक लहर दौड गई। हर एक ने बदलिया की सहायता करना अपना कर्त्तव्य मान लिया। कोई लडका बड़ों की आँखें बचाकर अपने घर से गुड़ का टुकड़ा उडा देता, और उसमें से अपना हिस्सा निकाल कर बदलिया को दे आता। कोई अपने हिस्से का सत्तू समाप्त करके अपने किसी भाई या बहिन का सत्तू उडा लेता और उसे 'नई भौजी' तक पहुँचा आता। कोई दूसरे लड़कों की कोई खाने की चीज चुरा लेता और उसे इस दुखियारी देवी के चरणों में अर्पण कर आता। नवयुवक उधर से गुनगुनाते निकलते, 'भौजी' कह कर बदलिया को सम्बोधित करते और दूसरों की दृष्टि बचा कर एकाध आम या दो-चार अमरूद फेंक जाते।

चन्दी भी उस छप्पर के कई फेरे लगा चुका था। वह अपनी करतूतों के कारण अब तक कुँवारा था, इसीलिये दूसरों की अपेक्षा बदलिया के साथ उसे अधिक सहानुभूति थी। मगर बदली उसकी सूरत से वैसे ही सहम जाती जैसे कबूतर बहरी को देख कर।

इसीलिये रात के भयानक अंधकार में जब वह एकान्त, गरज और चमक से घबरा-घबरा-कर करवटें ले रही थी, चन्दी का दबे पाँव उसके छप्पर मे आना किसी प्रकार सतोषजनक नहीं हो सकता था। अवश्य ही अकेले मे साथी की इच्छा बढ जाती है। जी चाहता है कोई हमदर्द पहलू में होता, उससे मिल कर बैठते, अपनी बीती कहते, परायी बीती सुनते। पर ये बातें एक स्वजातीय के साथ ही सभव है, भेड़ और भेड़िये या चिडिया और शिकारी में नहीं हो सकतीं।

बदलिया इसीलिये चन्दी को पहिचानते ही घबरा कर खाट पर उठ बैठी और उसने बड़ा-घूँघट निकाल लिया।

चन्दी मुस्करा कर बोला—"लो भौजी, तुम्हारे लिये ठाकुर के बाग के आम लाया हूँ।"—यह कहते-कहते उसने अँगौछे की गाँठ खोल कर एक दानवीर की तरह खाट पर आमों का ढेर कर दिया। लँगडे, दसहरी, सफेद के फल, डाल पर पके हुये, पूरे रस पर। वह सुगन्ध फैली कि जुगाली करते हुए बैल भी ऊँघना छोड़ कर शीशे की भाँति चमकती हुई आँखों से उनकी ओर ताकने लगे। बदलिया जानती थी कि चन्दी का यह उपहार बिना मतलब नहीं है, मगर आमों को देख कर मुँह में पानी भर आया। फिर भी चन्दी का भय छाया था, इसीलिये उसने उन्हे हाथ न लगाया। चन्दी ने इतनी देर में अँगौछे को निचोड़ कर उससे भीगा हुआ शरीर पोंछा। फिर उसे बाँध कर गीली धोती निचोड़ी और बाँध ली।

बदलिया का धड़कता हुआ हृदय जरा ठहरा ही था कि चन्दी इस कार्य से निपट कर बड़ी बेतकल्लुफी से खाट के पाँयते बैठ गया। बदलिया तुरन्त खाट से उतर कर उस ओर जमीन पर बैठ गई जिधर बैल बँधे थे। पास वाले बैल ने दो बार 'फूँ-फूँ' करके उसकी इस हरकत पर अश्चर्य प्रकट किया, मगर उसकी पहिचानी हुई गन्ध सूँघ कर फिर जुगाली करने लगा। चन्दी बदलिया के इस पैंतरे पर जरा हँसा और बोला—"हम काट न लेंगे भौजी, हम तो तुम से यह कहने आये हैं कि हमारी तुम्हारी जोडी अच्छी रहेगी।"

बदलिया गहरे कोहरे की भाँति मौन रही। चन्दी समझाने के ढग मे बोला—"मेरा झोंपड़ा घर वाली के बिना सूना लगता है, और तुम बिना मरद के दुखी हो।"

मगर जैसे बदलिया गूँगी थी। उसने कोई उत्तर न दिया। चन्दी ने आधे धड से खाट पर लेट के उसकी ठुड्ढी की ओर हाथ बढाते हुए कहा—"बोलती क्यों नही, बदली?"

वह हाथ झटक कर धीरे से बोली—"हमे ऐसी बाते अच्छी नहीं लगतीं, तुम यहाँ से चले आओ।"

चन्दी पर इस झिड़की का उलटा असर हुआ। वह खाट पर घूम कर उस ओर पाँव लटका के बैठा जिधर बदलिया थी। वह सहम कर पीछे हटी। चन्दी फिर हँसा। उसने अचानक झुक कर बदलिया की

कलाई पकड़ कर अपनी ओर घसीटा। बदलिया चिल्ला पडी। वह इतने जोर से चीखी कि बैठे हुए बैल फुफकारियाँ मारते उठ कर खडे हो गये और बदलिया की सास-ननँदे जाग उठीं।

चन्दी ने बदलिया के हाथ छोड दिये और घबरा कर कहा—"अच्छा, अच्छा, चिल्ला मत! ले मैं जाता हूँ, पर देख, आम जरूर खा लेना।"

यह कह कर वह झपट कर बाहर निकल गया। और उसी क्षण बदलिया की सास झोपडे में—"अरे क्या है डायन!" कहती हुई दाखिल हुई। उसे किसी के भागने की आहट मिल ही चुकी थी और जब दियासलाई जला कर उसने देखा, तो यह दृश्य दिखाई पड़ा कि बदलिया खाट से अलग खडी बड़ी-बड़ी आँखे निकाले डरी, सहमी-सी उसे देख रही है और खाट पर अच्छे-अच्छे आमों का ढेर है। बस, बरस पड़ी—"डायन बेहया, हरजाइन, मेरे कलुआ को खाकर अब यार बुलाती है! रह तो जा, सवेरा होने दे, बिरादरी भर के सामने तेरी चोटी न मूड़ दी तो अपने बाप की जनी न कहना।"

इतने में ननँदें भी अपने-अपने बच्चे बगल मे दाबे आ पहुँचीं। वे भी माँ के साथ मिल कर भनभनाने लगीं। फूस के छप्परों में रहने वाली चमरटोली यों ही वर्षा होने के कारण छप्परों के टपकने से जाग रही थी। यह शोर सुन कर दौड़ पडी। पानी थम गया था। इस गुल-गपाडे की आवाज दूर तक आसानी से पहुँची। खैर! बड़ी देर झक-झक-बकबक के बाद निश्चय हुआ कि सवेरे पर मामला उठा रक्खा जाय और उस समय पूरी जाँच करके बिरादरी दण्ड दे। इस निर्णय के बाद और सब तो चन्दी के लाये हुये आमों पर लोभ-पूर्ण दृष्टि डालते घर सिधारे, मगर छोटी ननँद ने ठिठक कर उस ढेर मे से चुन के चार आम उठा लिये, फिर वह एक को दाँत से छीलती, मटकती चल दी।

बदलिया ने वही इतमीनान महसूस किया, जो समुद्र के यात्री तूफान के सकुशल समाप्त हो जाने पर महसूस करते हैं। लेकिन इस इतमीनान से उसे किसी प्रकार की खुशी नहीं हुई, बल्कि दुख का अनुभव और अधिक हुआ। थोड़ी देर तो बैठी अपने फूटे भाग्य पर रोती रही, फिर वह उठी और झटपट एक-एक करके आम उठाये और उन्हे छप्पर के बाहर फेंकना शुरू किया। दो-तीन फल क्रोध मे फेंके थे कि एक

दसहरी हाथ में आ गया। वह सुगन्ध, वह आकर नर्म-नर्म फिसलता हुआ छिलका कि आप ही आप फेंकने के लिये उठा हुआ हाथ रुक गया! उसने एक दम उसे नाक के पास ले जाकर सूँघा। जैसे बिफरी हुई नागिन को जड़ी सुँघा दी गई हो, उस प्रकार वह झूमने लगी। उसने दो एक बार जबान का सिरा ओठों पर फिराया फिर 'उँह' करके जमीन पर उकडूँ बैठ कर उसे दाँत से छील कर खाने लगी। छप्पर मे बड़ी देर तक बैलों की जुगाली और बदलिया के चटखारों मे मुकाबिला होता रहा। हाँ, यह चटखारे केवल उतनी देर तक रुके थे जितनी देर कि बदलिया को अपने फेंके हुये आमों को फिर से चुन कर लाने मे लगी थी। इसके बाद तो बैलों को केवल मेढकों का टर्राना ही नही सुनना पडा, बल्कि बदलिया के खर्राटे भी! ..और उन्होंने जुगाली करके यह सह लिया। /

दूसरे दिन सवेरे जगल से पलटते ही सास-ननँदों ने मरे हुये बेटे-भाई का नाम ले लेकर वह 'कौवा गुहार' मचाई कि अड़ोस-पड़ोस की सब चमारिने इकट्ठी हो गईं। बदलिया नींद भरी आँखें लिये उनके बीच में चुपचाप बैठी रही। बार-बार पूछने पर उसने गऊ की सौगन्ध खाई कि उसका कोई यार नहीं है और न उसने किसी से कह के आम मँगाये।

सास ने हाथ चमका के कहा—"तो यह क्यों नहीं बताती कि कौन लाया था?"

बदलिया ने धीरे-धीरे कहा—"चन्दी आम लाये और हम पर हाथ डाला। हम चिल्लाये, वह भाग गये और सास आ गईं।"

छोटी ननँद, जिससे चन्दी से एक समय दोस्ती रह चुकी थी, कूल्हे पर हाथ रख कर बोली—"पराये घर मे जब तक कोई बुलाया न जाय, आये कैसे?"

एक चमारिन बोली—"अरे नहीं, वह बड़ा पाजी है।"

दूसरी ने कहा—"पर इसमें इसका भी दोष जरूर है।"

सास चीखी—"अरे दोष कहती हो, इस डायन ने मेरे कलुआ को खा लिया, अब यह यार ढूँढती है, चोरी का माल उड़ाती है। अरे यह हम लोगों की नाक ही न कटवायगी, बल्कि हमको जेल में भेजवायगी—जेल में।"

बड़ी ननँद ने बदलिया की ओर झपटते हुये कहा—"तो मार के निकाल दो पाजिन को!" और यह कहते-कहते उसने बदलिया को एक

तमाचा लगा ही तो दिया। बदलिया बौखला गई, मगर इसके पहले कि वह अपने बचाने का कोई उपाय कर सके, छोटी नर्नद ने भी बढ़ कर एक धौल जमा दी। अब तो सारी चमरटोली पिल पड़ी, कोई चमारिन कोस रही है, कोई मार रही है, कोई बाल नोच रही है। बदलिया ने जब जान बचती न देखी, तो उठ कर खड़ी हो गई और मौका पाते ही भीड़ से निकल कर पगली की तरह भागी। उसका श्यामल चेहरा पक्की ईंट की तरह लाल था, उसके बालों की लटें सिवार की तरह उलझी हुई मुँह और कंधों पर पड़ी हुई थीं और उसका शरीर रह-रह कर इस तरह काँप उठता था, जिस तरह भूडोल के हर झटके में मकान और पेड़ हिल जाते हैं। उसके नथुनो मे गर्म-गर्म साँस निकल रही थी। उसका गला बिलकुल सूख गया था और उसकी आँखें सामने के रास्ते को नहीं देखती थीं, बल्कि बहुत दूर किसी लक्ष्य की खोज मे थीं। वह इसी तरह बदहवास उस पक्कड के वृक्ष तक पहुँची जो चमरटोली के निकट ही था। उसने उसकी उभरी हुई जड से ठोकर खाई और मुँह के बल जमीन पर गिर पड़ी।

इस अचानक गिरने ने मन मे भरे हुए कष्टों को एक लडी मे गूँथ दिया और वह जमीन पर मुँह रक्खे सिसक-सिसक कर रोने लगी। मानो जमीन नहीं थी, बल्कि माँ की छाती थी, जिससे सिर लगा कर रो लेने मे आराम मिलता है। वह इसी तरह सिसक रही थी कि पत्तों में खड़खड़ाहट हुई और चन्दी पक्कड की मोटी-मोटी डालियो से उतरता हुआ जमीन पर अपनी लाठी सहित धम्म से कूदा। बदलिया इस धमाके पर एक हलकी-सी चीख के साथ उठ बैठी। एक अज्ञात खतरे के विचार ने उसके मन मे अत्यन्त भय पैदा कर दिया। उसके मस्तिष्क ने चन्दी को एक नये आक्रमणकारी के रूप मे पेश किया। वह जल्दी से उठ कर फिर एकदम भागी। वह बिलकुल एक पानी की उस भरी सुराही की भाँति लग रही थी, जो किसी ढालू स्थान पर लुढ़का दी जाय। सुराही की ही भाँति उसके मुँह से फेन जारी था। उसके गले से आवाज निकलती जाती थी और उसकी चाल टेढ़ी थी।

चन्दी कुछ क्षणों तक बदलिया के अचानक भागने पर उसे मुँह खोले देखता रहा। फिर वह उसके पीछे इस प्रकार दौड़ा, जिस प्रकार शिकारी किसी चिड़िया को जखमी करके पकडने दौड़ता है। बदलिया लडखडाई, बिलखती-सिसकती पास वाले तुखमी आमों के बाग तक

दौड़ी। फिर उसे चक्कर-सा आने और बाग लट्टू की तरह घूमता दिखाई देने लगा। वह लपक कर सब से पहले वृक्ष के तने से इस तरह जाकर लिपट गई, जिस तरह बच्चे किसी अपरिचित से डर कर माता की टाँगों से लिपट जाते हैं।

चन्दी निकट पहुँच कर ठिठक कर खड़ा हो गया। उसने दिलासा देने के ढङ्ग मे कहा—"कहाँ जाती है बदली ? क्या मायके मे सास-ननँदें तुझको रहने देंगी ? उन्होंने तुझको अपने घर से निकाल दिया, वह तुझको वहाँ से भी बदनाम करके निकलवा देंगी। अरी पगली, कहना मान, दूसरा घर बना !"

बदलिया भद से जमीन पर बैठ गई और बडी विवशता से रोने लगी। चन्दी उसे समझाता रहा, मगर सहानुभूति के शब्द कटे पर नमक का काम देते रहे, मानो चन्दी के शब्द न थे बल्कि डाक्टर का नश्तर था, जो जिगर के नासूर को फैला और बढा कर मवाद के निकलने में सहायता दे रहा था। लेकिन धीरे-धीरे विवशता और लाचारी का तूफानी अनुभव कम होना शुरू हुआ। ज्वार की जगह भाटे ने ले ली। चन्दी ने और निकट खिसक कर कहा—"अरे बदली, इस रोने-धोने से कुछ लाभ नहीं है। तू हमारे साथ चल कर रह, फिर किसी की इतनी हिम्मत न पडेगी कि तुझे आधी बात भी कह सके।"

बदलिया ने एक छिछलती निगाह चन्दी पर डाली। अच्छा-खासा जवान था। साधारण चमारों की तरह सूखा, कमजोर और भूखा नहीं लगता था। सूरत-शक्ल भी बुरी न थी। चेहरे से साहस और निर्भीकता टपकती थी। बदलिया की आँखों से आकर्षण की चमक पैदा हुई। उसने जल्दी से सिर झुका लिया।

चन्दी मुस्कराया—"अरी पगली, जब सब तुझको दोष ही लगाते हैं, तो फिर करके क्यों न दिखा दे ? किसी का दिया खाते हैं कि डर ?"

बदलिया ने और गरदन झुका ली। चन्दी ने आगे बढ़कर ठुड्ढी में हाथ देके झुके सिर को उठाया और आँखों में आँखे डाल कर घूरा। उस नजर मे सहानुभूति भी थी, याचना भी थी और बदलिया के लिये दुनिया भर से लड जाने वाला सकल्प भी था। फिर बदलिया की भीगी हुई पलकें उसके आँचल से पोंछ कर बोला—"ले अब उठ, घर चल।"

वह कन्धे पर लाठी रक्खे आगे-आगे चला, बदलिया घूँघट निकाले उसके पीछे-पीछे हो ली। जब दोनों चमरटोली से होकर निकले, तो बदलिया की सास और बडी ननँद ने रास्ता रोका। वह झिड़क कर बोला—"हट जाओ रास्ते से, नहीं तो सिर फोड देंगे।"

वे डर कर पीछे हटीं तो छोटी ननँद हाथ चमका कर बोली—"अरे यही रात को आम लाया था!"

चन्दी पलट पडा। उसकी आँखें शरारत से चमक रही थीं। "हाँ हमीं लाये थे, वह रात की चोरी थी ठाकुर के बाग की! यह दिन का डाका है, तुम्हारे घर का।"

बडी ननँद ने कहा—"वह हम पहले ही समझ गये थे कि यह डायन नाक कटवा के छोडेगी।"

चन्दी ने कन्धे पर रक्खी हुई लाठी जमीन पर जोर से खींच मारी। तीनों स्त्रियाँ जल्दी से छप्पर में घुस कर दरवाजे झाँकने लगीं। चन्दी ने डाँट कर कहा—"खबरदार जो कभी डायन कहा! यह अब मेरी मेहरिया है।" फिर एक बार लाठी घुमा दी। तीनों ने जल्दी से अपने सिर अन्दर कर लिये। और यह सपेरा अपनी नई नागिन सहित मुस्कराता हुआ आगे बढ गया।

दादी अम्माँ अपने तकियों के सहारे बैठ गई थी।

"मेरी प्यारी नानी-जुमरा !" प्रिंस मशहदी के मुँह से निकला।

दादी अम्माँ ने गरदन ऊँची करके उनके बालों का चुम्बन लिया —"तुम सब प्यारों की याद हमेशा मेरे दिल मे रही बेटा, तुम लोगो की मेहरबानियाँ—तुम्हारा और खास तौर से नन्ही शहजादी आयशा का बचपन मुझे कभी नही भूल सकता।"

मैं दरवाजे की ओर से सुन्दर शहजादे के चेहरे और उसके बात करने के सुन्दर ढंग का निरीक्षण कर रही थी। वे उस समय नानी पर किसी हद तक झुके हुए थे और कह रहे थे—"नानी, देख लो, तुम्हारी बीमारी की खबर सुनते ही तीन सौ मील से चला आया। फिर तुम कह रही हो कि मोहब्बत नही रही ? छुट्टियों के दिन हैं, हमारी शिकार पार्टी 'गोजरान' के झरने के पास आई हुई थी।"

दादी अम्माँ कहने लगीं—"यह तो खुदा की मरजी थी कि तुम ठीक वक्त पर आ गये। मै बहुत बीमार हूँ प्यारे ! जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं, खैर खुदा की मरजी। कहवा पियो, अभी तैयार हो जायगा।"

"नहीं इसकी जरूरत नही।"

"वाह, जरूरत क्यों नहीं ? देखो, घटायें उठ रही हैं। कहवे का मजा आ जायगा, जेबा—जेबा—कहवा !"

मशहदी की निगाहे मुझ पर थीं। मैं नजरें झुकाये परदे के पास चुपचाप खडी थी। जब मैंने देखा कि वे गौर से मेरी ओर देख रहे हैं, तो लज्जा के कारण मेरा चेहरा गुलाब की तरह लाल हो गया। उनके चेहरे पर हलकी मुस्कराहट थी। आँखे एकदम चचल हो गई थीं।

उधर दादी अम्माँ अपनी कहानी सुनाये जा रही थीं—"जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं, किसे पता कब मौत आ जाये ! बस, एक ही चिन्ता है बेटा, वह इस लड़की की है।"

"यह कौन लडकी है नानी ?" उन्होंने झट पूछा, जैसे वे उसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे।

"जेबा, इधर आओ प्यारी !" दादी अम्माँ ने आवाज दी।

मैं कहवादान हाथ मे लिये एक हलकी आसमानी रग की रेशमी चादर मे लिपटी-लिपटाई शहजादे के निकट गई और सिर झुका कर खड़ी हो गई।

शहजादा मशहदी, पहले तो कुछ देर मुस्करा कर गौर से मुझे देखते रहे, फिर बुजुर्गाना ढग से मुझे अपनी ओर खीच कर मेरे सुनहरे बालों पर मेहरबानी से हाथ रख दिया।

दादी जुमरा की ओर आधे पलट कर वे बोले—"फिक्र की कोई बात नहीं नानी! जेबा बहुत ही प्यारी लडकी है, ऐसी लडकियों के लिये फिक्र की क्या जरूरत?"

शर्म और लज्जा ने मेरी पलकों को और बोझिल बना दिया।

अभी तक उनका हाथ मेरे सिर पर था और उनकी निगाहें मेरे चेहरे पर। मेरी रगों मे रक्त बड़ी तेजी से दौड़ रहा था और साँस जोर-जोर से चल रही थी।

"फिक्र कैसे न हो बेटा? मेरी जिन्दगी मे जेबा अपने घर की हो जाती, तो मेरी रूह (आत्मा) मुस्कराती हुई इस ससार से, विदा हो जाती।" दादी अम्माँ की आँखें आँसुओं से धुँधली हो गई।

मुझे दादी अम्माँ के इस ढग पर अत्यन्त क्रोध आ रहा था। भला, शहजादा मशहदी के आगे इस चर्चा की क्या आवश्यकता थी? मैं घायल दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। शहजादे ने शायद मेरे हार्दिक भाव ताड़ लिये, मुस्करा कर बोले—"क्यों जेबा, तुम भी इस सिलसिले मे परेशान हो कि तुम्हारी शादी—?"

मैं गम्भीरतापूर्वक बोली—"बिलकुल नहीं शहजादे मशहदी, बिलकुल नहीं।"

वे हँस पड़े, बडे ही आकर्षक ढङ्ग से हँसे—इस प्रकार कि उनका चेहरा दमक उठा। मै धीरे से उनके हाथ के नीचे से निकल आई और खिड़की के पास चुपचाप एक कोच पर बैठ गई। बादल गहरे होते जा रहे थे और हवायें पागल राग अलाप रही थीं। समुद्र क्रोध से चीख रहा था।

शहजादा मशहदी ने एक सिगरेट सुलगा कर कहा—"प्यारी नानी! सुन्दर लड़कियों के लिये फिक्र करने की कोई जरूरत नहीं। इनकी तकदीर भी सुन्दर होती है।"

"खुदा ऐसा ही करे प्यारे!" नानी जुमरा ने कहा। फिर जरा धीमे स्वर मे बोलीं—"जुमेरात की शाम को लेफ्टिनेंट फीरोज की माँ मुझसे मिलने आई थीं। वे जेबा को पसन्द करती हैं, मेरा विचार है लेफ्टिनेण्ट फीरोज बहुत ही सीधा लड़का है।"

मैं लाल आँखों से दादी ज़ुमरा को देखने लगी।

"मैंने उस लड़के को एक दफा देखा जरूर है। अच्छा है, अगर मेरी राय पूछती हो, तो मैं अपनी बेटी की शादी उससे कभी न करता।" यह कह कर वह हँसने लगे।

"क्यों बेटा, क्या बात है?" दादी ज़ुमरा ने तकिये पर सँभल कर बैठते हुये कहा।

"कुछ नहीं, बहुत अच्छा लड़का है, बहुत सीधा-सादा, मगर जरूरत से ज्यादा नेक। और तुम जानती हो, मैं किसी भी बात मे 'अति' पसन्द नहीं करता। उसकी नेकी ने उसे उल्लू बना रक्खा है। नेक लोगों के चेहरे आँखों को कुछ विचित्र से लगते हैं।" कैसे पवित्र विचार थे! मैं एक-मुद्दत से दादी-अम्माँ की बूढी बातें सुनते-सुनते विरक्त-सी रहने लगी थी। अब इन नौजवान विचारों को सुन कर दिल में एक हूक-सी उठी। मैंने आदर और प्रेम की एक निगाह शहज़ादे पर डाली।

दादी-अम्माँ की समझ में कोई बात न आई। कहने लगीं—"मुझे तो इस इलाके के सभी लड़कों में यही एक भला लगता है।"

कुछ देर के लिये मैं कमरे से बाहर चली गई जिसमें कि यह कष्टप्रद चर्चा समाप्त हो जाय। जब दूसरी बार आई तो दादी-अम्माँ कह रही थीं—"यह तो कहो शहजादी जुबैदा कैसी हैं?"

"अम्मीजान अच्छी नहीं हैं, डाक्टरों का ख्याल है कि उन्हें अतड़ियों की दिक़ हो गई है। स्विटजरलैंड गई हैं। उनकी एक ही इच्छा है और वह यह कि उनकी जिन्दगी मे मेरी शादी हो जाय।" यह कह कर वे हँसने लगे।

दादी-अम्माँ शहजादे की ओर देख कर बोलीं—"ठीक तो है, उनकी यही इच्छा होनी चाहिये। बेचारी शहजादी जुबैदा ऐसे भयानक रोग का शिकार हो गई! तो फिर तुमने क्या निश्चय किया? कब करोगे शादी?"

बेपरवाही के साथ सिगरेट की राख झाड़ते हुये शहजादे ने कहा—"शादी तो जब होगी, होगी, अभी तो मँगनी हो गई है। अम्मीजान ने मेरे लिये नवाब नसीर की लड़की पसन्द की है। पिछले महीने मैंने उन्हे अँगूठी भी भेज दी है।"

दादी-अम्माँ खुश हो गईं। "खुदा मुबारक करे, बस बेटा, अब

शादी में देर न करो, शादी वही जो जवानी में हो जाय। तीस-तीस चालीस-चालीस वर्ष में शादी ! यह भी भला क्या शादी हुई, अब की वसन्त में कर डालो।"

इस चर्चा से मेरे दिल पर अचानक एक बिजली-सी गिरी ! ऐसा मालूम हुआ, मानो किसी ने मेरे आशा-भवन की नीव हिला दी हो। मगर आखिर क्यों—?

भूल

जब शहजादा मशहदी विदा होने को उठ खडे हुये, तो दादी जुमरा की आवाज ने मुझे चौंका दिया—"जेबा ! शहज़ादे को दरवाजे तक पहुँचा आओ, बेटी !"

शहजादे ने झुक कर दादी-अम्माँ के हाथ चूमे, फिर हम दोनों दरवाजे की तरफ चले, वहाँ पहुँच कर हम दोनों थम गये।

"जेबा ! खुदा हाफिज !" शहजादे ने मेरी ओर देख कर बड़ी नर्मी से कहा।

मेरा दिल एकदम चाहा कि उनके कोट का दामन पकड लूँ और उन्हें कभी न जाने दूँ, पर बड़ी कठिनाई से मैंने इतना ही कहा—"मगर आँधी चल रही है।"

"बहुत अच्छा जेबा ! अगर तुम्हारी यही इच्छा है, तो मैं नहीं जाता। तुम कितनी मेहरबान हो !" अपना मतलब उनके ओठों से अदा होते देख कर मैं शर्मा गई। बोली—"मेरा मतलब था, ऐसे मौसम में बाहर जाने से आपको तकलीफ होती।"

वे मुस्कराये—"मैं जानता हूँ मौसम बुरा है। चलो, कुछ देर उस सामने के झरोखे मे खडे होकर आँधी का दृश्य देखे।"

सामने सीढी के पास एक लम्बी-सी सुन्दर खिडकी खुली हुई थी, जिसमें से समुद्र का दृश्य अच्छी तरह देखा जा सकता था। मैं जादू की पुतली की तरह उनके साथ खिड़की तक गई। दोनों चुपचाप खिड़की मे खडे बाहर का दृश्य देखने लगे।

कुछ देर चुप रहने के बाद वे एकाएक मेरी ओर पलट गये। मुझे गौर से देखते हुए बोले—"जेबा ! तुम्हें मालूम है, तुम बेहद खूबसूरत हो ? न जाने तुम्हारी दादी तुम्हारे लिये परेशान क्यों हैं ?" फिर मेरी ठुड्ढी पकड़ कर ऊपर को उठाते हुए कहने लगे—"देखो,

क्या चाँद-सी सूरत है ! ऐसी सुन्दरता आम तौर से देखने मे नहीं आती।"

उस समय मेरे दिल मे एक दर्द-सा उठा। कुछ देर बाद हिम्मत करके बोली—"दुनिया मे सौन्दर्य की कमी नही।"

"मसलन—?" शहजादे मशहदी ने चचलता से पूछा और आप ही आप मेरी जबान से निकल गया—"मसलन नवाब नसीर की सुपुत्री !" और फिर एकदम मुझे अपनी मूर्खता का अनुभव हुआ। वे चकित होकर मुझे देखने लगे—"एँ ? क्या नवाब नसीर की लडकी को तुम जानती हो ? मैंने उसे कभी नही देखा।"

"जी नहीं, मैंने भी नही देखा, लेकिन अनुमान है कि वे बहुत ही सुन्दर होंगी।"

शहजादे ने गम्भीरता से कहा—"जेबा ! क्या यह विचित्र बात नहीं, मैंने उस लड़की को देखा तक नहीं जो मेरी जीवन-सगिनी बनने वाली है और जिस पर मेरी जिन्दगी निर्भर होगी ?" फिर एक फीकी हँसी हँस कर कहने लगे—"जेबा ! इस समय तुम मुझे अपने मन मे मूर्ख तो नहीं समझ रही हो ?"

वे मुझसे इस बेतकल्लुफी से बातें कर रहे थे, जैसे साथ के खेले हुए हों। मैं कुछ प्रभावित हो गई, बोली—"मैं आपके विषय मे कभी ऐसा नहीं सोच सकती।"

"कैसा—? यह कि मैं मूर्ख हूँ ? मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ, जेबा ! मैं सचमुच मूर्ख हूँ, मेरी माँ ने एक ऐसी लडकी से मेरी मँगनी कर दी है, जिसे मैंने स्वप्न मे भी नहीं देखा। मगर ताज्जुब तो मुझे इस बात का है कि आज से पहले मुझे अपनी इस भूल का अनुभव क्यों नहीं हुआ ?"

हम दोनों चुप हो गये। मेरे मन में एक अज्ञात भय का अनुभव था। भविष्य पर एक भारी परदा पड़ा था। और परदे के पीछे के रहस्यों ने मेरे दिल को तरह-तरह की आशकाओं से भर रक्खा था।

बड़ी देर तक हम मौन खडे रहे। बाहर आँधी पुराने पेड़ों को उखाडे दे रही थी। काले बादल समस्त आकाश पर छा गये थे। समुद्र भयानक खूनी जन्तु की तरह गरज रहा था। जब मैं घर मे वापस आई तो उदास थी। न जाने क्या सोच रही थी। न जाने मेरा दिल क्यों

धड़क रहा था। आप मे आप कभी आँखों मे आँसू उमड आते, कभी ओठों पर हलकी-सी मुस्कान आ जाती।

खींचतान

उसी सध्या की बात है कि बादल और भी अधिक गहरे हो गये थे। वायु का शोर कान के परदे फाडे डालता था? मैं रसोई-घर में दादी जुमरा के लिये शोरबा गर्म कर रही थी कि उमी वक्त शाहबलूत के वृक्ष के निकट एक छाया-सी चलती हुई दिखाई दी। ऐसे मौसम मे कौन मुलाक़ाती आ सकता था? मैंने खिड़की से झाँक कर देखा, तो लेफ्टिनेंट फीरोज़ का सिर दिखाई दिया। मेरे दिल से एक आह निकल गई।

मुझे आज पहली बार अनुभव हो रहा था कि मुझे उस आदमी से प्रेम नहीं है। मैं उससे प्रेम कर ही न सकती। क्यों? क्यो नहीं कर सकती? इसका मेरे पास कोई जवाब नही था। मेरी आँखे आँसुओं से तर हो गईं। मैंने बादलों को देखा, जिनके काले साये मे मेरा कासनी लिबास और भी गहरे रग का मालूम हो रहा था।

मैं शोरबे की प्याली हाथ मे लिये दादी जुमरा के शयन-गृह मे दाखिल हो गई। लेफ्टिनेंट फीरोज मुझे देख कर उठ खड़ा हुआ और धीरे से बोला—"आपकी दादी सो रही है। शोरबे की प्याली तिपाई पर रख दीजिये और बाहर चलिये।"

मैंने कहा—"कहाँ?"

"बगीचे में चलिये, आँधी का जोर देखें। यहाँ बातों की आवाज से कहीं वे जाग न जायँ।"

मैंने कुछ रुखाई के साथ कहा—"यह क्या जरूरी है कि हम यहाँ बैठ कर बाते ही करें?"

मेरे इस लहजे पर चकित होकर वे मुझे देखने लगे। कुछ दिनो से सब लोगों के दिल मे यह ख्याल पैदा हो गया था कि हम दोनों का एक-दूसरे से सम्बन्ध होने वाला है, यद्यपि हमारी बाक़ायदा मँगनी नही हुई थी। स्वय फीरोज भी इस गलतफहमी के शिकार थे। इसलिये जब उन्होंने मुझे पहले की अपेक्षा कुछ बदला हुआ पाया, तो धीरे से बाग के जीने पर लाकर पूछा—"जेबा! क्या बात है?"

मैं पीले गुलाब की एक पत्ती बेपरवाही से मसल रही थी, बोली—"कोई बात नहीं।"

लेफ्टिनेंट फीरोज कहने लगे—"क्यों जेबा! क्या तुम अपनी दादी की बीमारी से परेशान हो? अगर यही वजह है तो प्यारी अपने दिल को मजबूत रक्खो! खुदा ने चाहा तो वे हफ्ते भर में तन्दुरुस्त हो जायँगी और फिर—हम लोग...।"

"खुदा के लिये—" मेरे मुँह से निकला—"चुप रहो, आज ये बातें मुझे अच्छी नहीं लगती।"

"क्या शादी की बातें अच्छी नहीं लगती?"

"जरूर लगती हैं—!"

लेफ्टिनेंट फीरोज चकित होकर मुझे देखने लगे। फिर कुछ ठहर कर बोले—"मैं बिदा होता हूँ, आँधी बढ़ती जा रही है, तुम भी आज परेशान हो, कल आऊँगा।" यह कह कर वह चला गया।

मैं कुछ देर खड़ी उस शमशाद के वृक्ष को देखती रही, जो आँधी के जोर से झुक कर जमीन को चूम रहा था। फिर धीरे-धीरे दादी-अम्माँ के शयन-गृह में गई। वे अभी तक सो रही थीं। मैं चुपचाप उनके सिरहाने बैठ गई।

मेरे विचार खुदा जाने, कहाँ-कहाँ फिर रहे थे। कमरा शान्त था। कभी-कभी दूर से बादलों के गरजने की आवाज आ जाती, या फिर दादी जुमरा की साँस की आवाज आ रही थी। शहजादे मशहदी की सुन्दर सुडौल मूर्त्ति मेरी आँखों मे मौजूद थी। बेपरवाही अन्दाज, चित्ताकर्षक मुस्कान, सुन्दर चेहरा, चचल बातें, फिर उनका वह वाक्य—जिसने मेरे काल्पनिक ससार मे हलचल मचा दी थी—"आज से पहले मुझे इस भूल का अनुभव क्यों नहीं हुआ?"

अल्लाह!—मेरे खुदा! इससे उनका क्या मतलब था? आज से पहले—! क्या वे मुझसे प्रेम करते है—? मगर मैं तो अपना दिल, अपने दिल का एक-एक कोना उनके प्रेम-प्रकाश से आलोकित पाती थी।

शहतूत की छाया में

उस दिन के बाद मुझे हर रोज शहजादा मशहदी का इतजार रहा। अक्सर समुद्र की ओर इस आशा में निगाहें दौड़ाती कि शायद वे आ रहे हों। मगर उस दिन के बाद वे हर्गिज़ नहीं आये।

एक दिन, जब कि मैं बिलकुल निराश हो चुकी थी, दोपहर के खाने से जरा पहले कुछ ओठों ही ओठों में गुनगुनाती हुई बाग़ में

शहतूत के वृक्ष के पास गई और नानी जुमरा के लिये शहतूत तोड़ने लगी कि कृत्रिम गरमी से पकाऊँ।

मौसम बहुत ही मनोहर था। हलकी गरमी बहुत सुखद लग रही थी। बादल फट गये थे, समुद्र गहरे नीले बनफशे के फूल के रंग का हो रहा था। हरे पत्तों पर सुनहरी धूप जगमगा रही थी। एशिया का ढीठ सूर्य अपने पूरे तेज से जगमगा रहा था।

उसी समय बाग के जीने पर किसी के पैरों की चाप सुनाई दी। और मैं एकाएकी न जाने क्यों काँप गई।

"प्यारी जेबा!" मशहदी की मोटी आवाज सुनाई दी—"मैंने सारे घर मे तुम्हे ढूँढ डाला!"

मेरा चेहरा चमक उठा। मेरी आशाओं का चन्द्र किसी क्षितिज पर उभर आया। मैं अपनी प्रसन्नता छिपा न सकी। मशहदी क़रीब आ गये, कहने लगे—"वखुदा! तुम तो आग की तरह लाल हो रही हो, क्या बात है?"

मैं अपनी प्रसन्नता को छिपा कर बोली—"दोपहर के खाने के लिये शहतूत तोड़ रही थी कि कृत्रिम गरमी से पकाऊँ। आप तो कई दिनों बाद तशरीफ लाये।" अन्तिम शब्द गले में फँस कर रह गये।

वे एक टहनी पर नजर जमाकर बोले—"यहाँ आना शायद न आने से ज़्यादा तकलीफ देता, क्योंकि—"

मेरा दिल धड़कने लगा। मुझे विश्वास हो गया कि यह भूमिका है। वे चन्द ही मिनटों बाद कुछ इससे अधिक स्पष्ट बात कहेंगे। मगर उन्होंने शहतूत की एक टहनी झुका कर बातचीत का रुख बदल दिया—"दोपहरी कैसी गर्म है!"

मेरा दिल बैठ गया। जी चाहता था कि वे अपने अधूरे वाक्य को अधिक स्पष्ट करते। मैंने पूछा—"यहाँ आना न आने से ज्यादा तकलीफ क्यों देता?" इस सवाल के बाद मुझे विश्वास था कि मैं एक लम्बी प्रेम-कहानी सुनूँगी।

वे एक मधुर मुस्कान के साथ मेरी ओर देख कर बोले—"जेबा, ऐसे सवाल जिस आसानी से किये जाते हैं उस आसानी से उनके जवाब नहीं दिये जा सकते।" यह कह कर किसी ख्याल में सीटी बजाने लगे।

मुझे गुस्सा आ गया। आखिर कब वे साफ-साफ शब्दों में मुझसे कहेंगे कि उन्हे भी मुझसे प्रेम है। यह पसोपेश क्यों? मैं इससे थक गई थी। मैं चाहती थी कि जो बेचैनियाँ मेरी रात की नींद और दिन के आराम की दुश्मन बन रही हैं वे प्रेम प्रकट करके उन्हे खत्म कर डाले। मैं समझती थी कि वे उचित अवसर खोज रहे हैं और आज की मुलाकात मे अवश्य अपनी प्रेम-कहानी सुना कर रहेंगे।

अचानक वे मुड़ कर बोले—"जेबा! खुदा हाफिज!" (ईश्वर रक्षा करे)

मैं घबरा गई—"क्यों?"

"एक काम है।"

मेरा दिल टूट गया। आह जालिम! निर्दयी! शहतूत की छाया मे क्या चीज तुझे प्रेम-प्रदर्शन से रोक रही है? मौसम मनोहर था, समुद्र लहरें मार रहा था, सुनहरी धूप बगीचे पर मुस्करा रही थी। ऐसे समय कौन-सी चीज प्रेम प्रदर्शन से रोक सकती थी?

मैं इन्हीं विचारों मे खोई थी कि वे जाने के लिये तैयार भी हो गये।

मैं घबरा कर बोली—"आप को समुद्री मछली का शौक नहीं है? है तो आप दोपहर का खाना यहीं खाइये।" मैंने यह इसलिये कहा कि प्रिंस मशहदी को कुछ घंटे और यहाँ रुकने का मौका मिल जाय। वे हँस कर बोले—"मेरे रुक जाने से तुम्हे खुशी होगी?"

"बेहद!" मैंने कहा—"खाना बिलकुल तैयार है।"

"अच्छी बात है।" शहजादा मशहदी ने कहा। मैं उन्हे भोजन के कमरे मे ले आई।

वह चाँदनी रात

उस दोपहर दादी जुमरा की तबीअत कुछ अच्छी थी। वे भी मेज पर खाने में शरीक थीं। संयोग कहिये या दुर्भाग्य कि हम खाने पर बैठे ही थे कि बाहर की घंटी बजी।

दादी जुमरा मुस्करा कर बोलीं—"क्या अच्छा हो कि घंटी बजाने वाला फीरोज निकले, क्योंकि मशहदी, मैं चाहती हूँ कि तुम एक नजर उस लड़के को देख लो।"

दादी-अम्माँ पर मुझे इतना गुस्सा आया कि जिसकी हद नहीं! मैं घबरा-सी गई। मशहदी एक आलू का टुकड़ा छुरी से काट कर खा

रहे थे कि इतने में क्या देखती हूँ कि दादी-अम्माँ की इच्छानुसार लेफ्टिनेंट फीरोज अन्दर चले आ रहे हैं।

"बड़ी उम्र है तुम्हारी! अभी तुम्हारा ही जिक्र था। यह लेफ्टिनेंट फीरोज है, और यह प्रिंस मशहदी। सुलतान के सब से छोटे साहबज़ादे।"

दोनों बोले—"हम पहले मिल चुके हैं।"

दादी-अम्माँ का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा। मैं प्रतिमा की तरह चुपचाप थी और अपनी प्लेट पर झुकी असाधारण व्यस्तता प्रकट कर रही थी। फीरोज आकर मेरी बाईं ओर बैठ गया, क्योंकि यही एक जगह खाली थी।

"समुद्री मछली बहुत अच्छी तली गई है।" शहजादा मशहदी ने कहा।

लेफ्टिनेंट फीरोज बोला—"खातून जेबा न केवल मछली के शिकार में बल्कि मछली पकाने में भी खास योग्यता रखती हैं। क्यों जेबा? कल नहरे शरबूत पर मछली के शिकार को चलोगी?"

"नहीं—" मैंने रुखाई से जवाब दिया, फिर गोश्त पर नीबू निचोडते हुए बोली—"मुझे मछली के शिकार का इतना शौक नहीं, जितना तुम समझते हो कि है।"

"तो क्या इस हफ्ते शरबूत नहीं चलोगी?"

"नहीं, मेरा जी नहीं चाहता।"

दादी-अम्माँ आकर्षित हुईं—"जेबा! क्या बात है? एक महीने से तुम कुछ सुस्त-सी रहती हो।"

मुझे विश्वास था कि इस सवाल का कुछ असर शहजादा मशहदी पर जरूर पडेगा। मगर जब उनके चेहरे की तरफ नजर उठाई तो वहाँ कुछ न था। वे बडे इतमीनान से अनन्नास का एक टुकडा अपनी प्लेट में लिये फलों को छोटी-सी छुरी से काट कर खाने में व्यस्त थे।

खाने के बाद मैंने किसी न किसी बहाने उन्हें रोक रक्खा। शायद किसी ज्यादा उचित समय में वे प्रेम की कोई बात मुझसे कहें, शायद उस फ्रॉसीसी खिडकी में बैठ कर कहें, जो नीले समुद्र की ओर खुलती है, शायद सनोवर के उस सुन्दर वृक्ष के नीचे, जो बसन्त की पवनों में मस्ती से झूमता है, शायद बाग के उस जीने पर, जिस पर नारंगी

के वृक्ष की छाया धूप और चाँदनी मे काँपती है, या शायद रात्रि की नीरवता मे—जब मई का नारंगी और चमकदार चाँद उपवन को मस्त कर देता है। इस विचार से मैंने उन्हे रात तक रोके रक्खा।

आखिर वह चाँद भी निकला—जिसके प्रकाश मे मुझे आशा थी कि मेरी अभिलाषाओं की कली खिलेगी।

वह एक अत्यन्त 'रोमांटिक' रात थी। गर्म एशिया की एक सुन्दर रात। नीले आकाश पर मई मास का चाँद निश्चल था। वायु मे वृक्षों का शोर एक स्वर्गीय संगीत की तरह प्रतीत हो रहा था। समुद्र नींद मे बहक रहा था। पीले नीबू के वृक्षों पर गर्म ऋतु की बुलबुल रह-रह कर दर्दे-दिल बयान कर रही थी। सागर तट पर ऐसी मनोहर चाँदनी को देख कर जल-परियाँ भी अपनी प्रेम-कहानियाँ दुहरा रही होंगी। ऐसे समय मे मैं नौजवान शहजादे को एक अरबी बनावट की रंगीन और जालीदार खिड़की मे ले आई, जिसके नीचे एक फव्वारे का पानी बेहोशी की हालत मे उबल रहा था—आह! प्रेम प्रदर्शन के लिये इससे अच्छा समय और स्थान क्या हो सकता था? झरोखा, चाँद, फूल, संगीत, वह सब चीजे मौजूद थीं, जिनसे साहित्य का संसार रंगीन है।

हम दोनों देर तक चुप खडे रहे। आखिर उकता कर मैंने कहा—"वह बुलबुल क्या गा रही है? क्या कहना चाहती है?"

बुलबुल जैसे रसिक पक्षी की चर्चा छेड कर मैं प्रसन्न थी कि शायद इससे कोई आरम्भ हो, मगर वे कहने लगे—"मैं पक्षियों की बातों पर आम तौर से ध्यान नहीं देता—मगर कवियो का कहना है कि बुलबुल एक हसरत-नसीब पक्षी है।"

मैंने अपना प्रयत्न जारी रक्खा—"क्यो! कवि उसे हसरत-नसीब क्यों कहते हैं?"

"सुना है, यह गुलाब की प्रेमी है, और तुम जानती हो कि जो प्राणी प्रेम करता है वह सदा दु:ख और दर्द से पीडित रहता है।"

मेरे दिल की कली खिलने के करीब थी। मुझे विश्वास हो गया कि यह बातचीत बढते-बढते अन्त मे व्यक्तिगत रूप धारण कर लेगी? बुलबुल और गुलाब का स्थान मैं और मशहदी ले लेंगे। मगर अफसोस, उसी समय उन्होंने अपने कोट की जेब से सिगरेट-केस निकाल कर एक सिगरेट सुलगा लिया और उसके धुएँ मे से सामने समुद्र को ताकने लगे, जिसमे नन्हीं-नन्हीं नौकाये आ और जा रही थीं।

मैं बोली—"जी चाहता है समुद्र की सैर करें, ऐसी सुहावनी चाँदनी में नौका मे धीरे-धीरे बहाव पर जाना—अल्लाह !"

वे तुरन्त राजी हो गये—"मेरा विचार है तुम्हारी दादी इससे बुरा न मानेंगी यदि तुम मेरे साथ चलो। आखिर इसमें हर्ज ही क्या है। तुम्हारी मँगनी हो चुकी है और दुनिया की नजरों में मैं भी एक लडकी का मँगेतर हूँ।" वे हँस पडे। लेकिन उनकी इस बात का मेरे दिल पर क्या असर पड़ा यह न पूछिये। नौका की सैर का सारा आनन्द मिट्टी में मिल गया।

कुछ देर बाद एक चन्द्राकार नौका आत्म-विस्मृति की दशा मे हमे रुपहले पानी पर लिये जा रही थी।

"जेबा !" मशहदी ने कहा—"कैसी प्यारी रात है। काश जेबा! हमारी पूरी जिन्दगी एक ऐसी ही लम्बी रात होती। मैं समझता हूँ, इससे ज्यादा सुन्दर रात कभी नही आई। यह हसीन रात, ओफ़्फोह !"

प्रसन्नता के वेग से मेरा दिल धड़क रहा था। इस तीव्र गति से कभी न धड़का था। मेरी आत्मा चीख पड़ने के करीब थी। जी चाहता था, उस प्रेम-देवता के आगे अपने दिल की किताब खोल कर रख दूँ।

"जेबा!" उन्होंने मुझे सम्बोधित किया—"ऐसी हालत मे तुम ऐसी गुमसुम क्यों हो ?"

"क्योंकि—क्योंकि मैं जानती नहीं कि मुझे क्या कहना चाहिये !" मेरी आवाज काँप गई, दिल पागल हुआ जा रहा था।

"इसका क्या मतलब, जेबा ? क्या तुम सुस्त हो ?"

मेरी आँखों में आँसू भर आये। क्योंकि यह सब इतना अचानक हुआ जो मेरी सहनशक्ति से बाहर था।

"आह! यह चाँद की रोशनी मे तुम्हारा रुपहला आँसू मेरे दर्दे-दिल की तफसीर (टीका) कर रहा है।"

यह कहते हुए उन्होंने मेरा एक हाथ अपने हाथ में ले लिया और झुक कर रहस्य भरे स्वर में पूछने लगे—"जेबा, कहो, इस रात से पहले कभी ऐसी सुन्दर रात जिन्दगी में आई थी ? ऐसी मनोहर, ऐसी आकर्षक !"

"कभी नहीं!" एक सिसकी भर कर मैंने कहा—"न फिर—न फिर कभी आयगी—" मैंने वाक्य खतम किया।

"तुम अपने भविष्य पर इतना सन्देह करती हो! मुझे नहीं मालूम था।" फिर उन्होंने प्रेम से मेरा चेहरा उठा कर कहा—"क्या तुम अपने मँगेतर से सतुष्ट नही हो, जेबी? क्या तुम दोनों मे प्रेम नही है?"

"प्रेम मशहदी? मुझे फीरोज से नफरत है!" मैंने पहली बार काँपते हुए स्वर मे उनका नाम लिया, क्योंकि अभी-अभी उन्होंने मुझे जेबी कहा था।

वे चकित होकर मेरी ओर देखने लगे—"मैं तो समझता था कि तुम भविष्य के विपय मे सुन्दर स्वप्न देख रही होगी। मेरा ख्याल था तुम दोनों आपस में एक दूसरे से प्रेम करते हो या कम से कम नफरत तो नहीं करते। तुम्हारी दादी ने मुझसे यही कहा था कि तुम दोनों इस सम्बन्ध से नाखुश नहीं हो।"

मैं पानी की ओर देखते हुए बोली—"हाँ, मैं नाखुश नहीं थी, मगर मैंने फीरोज़ से प्रेम कभी नही किया।"

"मगर अब तो तुम उससे नाखुश जान पड़ती हो, बल्कि कभी ऐसा मालूम होता है कि उसके विरुद्ध तुम्हारे दिल मे नफरत भरी हुई है।"

मैं पानी मे चाँद के मनोहर प्रतिबिम्ब पर नजर जमा कर बोली—"निःसन्देह, अब तो मेरी आत्मा उस व्यक्ति से अलग हट जाना चाहती है।"

"लेकिन आखिर इसकी वजह, जेबा?"

आह! कितने भूले हुए थे! मैं इसकी वजह उन्हे कैसे समझती कि मैं फीरोज से एकाकी नफरत करने लगी थी। उनने कैसे कहती कि मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। आह! एक लड़की अपना दिल चीर कर नही दिखा सकती। मेरी लज्जा मुझे कभी इस बात की आज्ञा न देती, यह तो उन्हे स्वय समझ लेना चाहिये था कि अचानक नफरत की वजह क्या है। अगर मैं उनकी जगह होती तो पहिचान जाती। क्षणों मे ताड़ जाती।

वे प्रश्न की मूर्त्ति बन कर मेरी आँखों को ताक रहे थे। क्या वे भी मुझसे प्रेम करते थे? आह! इसी सन्देह ने तो मेरे जीवन में उथल-पुथल मचा दी थी। वे जरूर मुझसे प्रेम करते है, चाहे प्रकट न भी करें। मैं समझ सकती हूँ कि इसका अवसर अभी नही आया। उनके दिल की गहराइयों में एक ही चीज पाई जा सकती है, और वह है मेरा

प्रेम !—मगर क्या पता—यह सब कुछ धोखा हो, सिर्फ धोखा, वे मुझसे प्रेम ही न करते हों, लेकिन—अगर वे मुझसे प्रेम न करते तो ऐसी चाँदनी रात मेरे जीवन मे आई क्यों ? वे दादी-जुमरा का हाल पूछने के बहाने दुबारा यहाँ क्यों आते ?

मेरी खमोशी हद को पहुँच गई थी। वह तग आकर बोले, "जेबा ! अगर मेरा पूछना बुरा लगा हो तो मैं माफी चाहता हूँ।"

"आपका पूछना कभी भी बुरा नहीं लग सकता।"

"तो फिर तुम चुप क्यों हो ?"

"क्या बताऊँ मशहदी ! मै क्यों फीरोज से नफरत करने लगी हूँ।"

वह बच्चों के से लहजे में बोले, "अच्छा तो तुम पहेलियों ही मे बता दो, मैं बूझ लूँगा।"

"यह मेरी जिन्दगी का बहुत बडा राज है।" मैंने काँपते हुये कहा।

यह सुन कर उन्होंने अपना सुन्दर मजबूत हाथ मेरे कन्धे पर रख कर कहा—"खुदा की कसम, जेबा ! फिर तो ऐसी शादी नहीं होनी चाहिये। अगर तुम फीरोज की बीबी बन गई, तो इन सुन्दर आँखों की क्या हालत होगी ? यह नन्हा-सा कोमल शरीर नफरत की आग में जल-जल कर खाक हो जायगा। जहाँ प्रेम न हो वहाँ जिन्दगी वीरान है ! क्या यह नहीं हो सकता—कि तुम—तुम दोनों का रिश्ता टूट जाय ?"

"यह सब कुछ तुम्हारे ऊपर निर्भर है।" एक चीख की तरह मेरे मुँह से निकल गया। "मशहदी ! तुम चाहो तो सब कुछ हो सकता है।"

उनकी आँखों में दृढता की चमक पैदा हुई। बोले, "मैं पूरी कोशिश करूँगा कि यह रिश्ता टूट जाय। तुम्हारी दादी से भी कहूँगा और उस भले आदमी को भी समझाऊँगा। अच्छा जेबा ! अब सब कुछ भूल जाओ। जीवन की कटुता का ध्यान छोड़ दो। चाँद को देखो, इस गरजने वाले समुद्र को देखो, क्षितिज में उन धुँधले पहाडों को देखो। जेबा ऐसी सुन्दर रात मे जीवन की कटुताओं को याद न करना चाहिये।"

हम लोग चाँदनी में खो गये।

टूटी आशायें

दूसरे हफ्ते शहर मे घर-घर यह खबर आग की तरह फैल गई कि मेरी और फीरोज की मॅगनी की जो अफवाहें थीं, उनका परिणाम बुरा हुआ, यानी हमारा सम्बन्ध विच्छेद हो गया। स्त्रियों मे कानाफूसी होने लगी। किसी ने यह अफवाह उडाई कि अगले बृहस्पति की शाम को शहजादा मशहदी मुझसे विवाह करेंगे। किसी ने कहा कि फीरोज ने स्वय वह सम्बन्ध तोड दिया। गरज हर एक अपनी हैसियत के मुताबिक ख्याल दौडा रहा था। मगर अकेली मैं उसका कारण जानती थी। दादी-जुमरा पर इस घटना का बहुत बुरा असर पड़ा। वे कुछ बीमार-सी हो गई।

एक दिन जब कि मैं बाग मे शहतूत तोड़ रही थी, वह मुश्किल से बाग के जीने को ते करके मेरे पास पहुँची। कहने लगी—"जेबा, आखिर तुम्हारा इरादा क्या है? फीरोज से अच्छा पति तुम्हे कहाँ मिलेगा? तुम बडी बेवकूफ निकलीं!"

मै अनजान बनी शहतूत तोडने मे लगी थी। वे सामने एक छोटे से तिनकों के कोच पर बैठ गई, "आखिर मुझे बताओ तो तुम्हारा इरादा क्या है?"

मेरी आँखों मे आँसू आ गये, "दादी-जान! मुझसे बार-बार न पूछिये कि मेरा इरादा क्या है, मैं क्या करूँ, मैं मजबूर थी। लेफ्टिनेण्ट फीरोज मुझे नापसन्द थे।"

"मगर आखिर क्यो? पहले तो तुमने कभी यह नहीं कहा था।"

मै फिर चुप हो गई।

इस घटना के बाद मैं समझती थी कि शहजादा मशहदी बहुत ज्यादा आया जाया करेंगे, मगर वे इकट्ठे चार दिन गायब रहे। मैं उनके इस व्यवहार से चकित हो रही थी। चौथे दिन शाम के समय मैं ऊपर की मजिल के ड्राइग रूम मे बैठी सितार बजा रही थी। दिल पर दुःख का भारी बोझ-सा रक्खा हुआ था, आँखों में आँसू थे और ओठों मे 'आह', जो मानो सितार के काँपते हुये तारों के साथ नाच रही थी :—

जान तुम पर निसार करते है,
काश, पूछो मुद्दआ क्या है?

उसी समय ठीक खिड़की के नीचे बागीचे में किसी की बातचीत की आवाज आई। मैंने सितार क़ालीन पर रख दिया। खिडकी से नीचे झाँक कर देखा तो दादी-अम्माँ और शहजादा मशहदी दिखाई पड़े। चार दिन के बाद मशहदी को देख कर दिल की अजीब हालत हुई! उधर उन्हें देखने की खुशी, उधर चार दिन न आने की शिकायत और बेपरवाही का दुख। वह उस समय बहुत ही सुन्दर दीख रहे थे। सुन्दर, सफ़ेद नेकटाई मे उनका चेहरा इतना भोला-भाला लग रहा था जैसे किसी बच्चे का। दादी अम्माँ कह रही थीं, "आखिर अब मैं क्या करूँ?—बेटा मशहदी तुम्हीं राय दो!—आखिर आयन्दा वह क्या करेगी? उसने न सोचा, न समझा, झट उसे नापसन्द कर दिया। आखिर फीरोज से अच्छा पति उसे कहाँ मिल जायगा?"

मशहदी इतमीनान के साथ बोले, "दुनिया बहुत बड़ी है, दादी जुमरा! आखिर जेबा ने कुछ सोच कर ही उसे नापसन्द किया होगा।"

दादी-अम्माँ दुःख और क्रोध से बेचैन होकर बोलीं, "खाक सोचा होगा! बेवक़ूफी और नासमझी से फीरोज को हाथ से गँवा बैठी। मेरी समझ में नहीं आता अब आयन्दा वह करेगी क्या।"

"वह हैं कहाँ?" मशहदी ने पूछा।

"ऊपर ड्राइंग रूम मे थी—चार दिन से तुम भी नहीं आये।"

"हाँ, मुझे जरूरी काम था।"

थोडी देर मे जीने पर किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। फिर वह नीला परदा सरका, जिस पर जगली छिपकली की तसवीर थी। शहजादा मशहदी सदा की तरह मुस्कराते हुये मेरे सामने आ खडे हुये। वह उस समय इतने सुन्दर मालूम होते थे जितने कभी न मालूम हुये थे। पहले तो उन्होंने आगे को झुक कर सिर हिला कर सलाम किया। फिर मेरे पास आकर बेतकुल्लुफी से बैठ गये, "जेबा! सुनाओ चार दिन कैसे बीते? मैं तो बहुत व्यस्त रहा।"

मैं बोली, "मैं समझती थी कि तुम मुझे भूल चुके।"

कहने लगे "नहीं, नहीं, यह बात नहीं थी। मैं तुम्हें कभी नहीं भूल सकता, जेबा! कभी नहीं! बात यह है कि घर मे अम्मी-जान का एक लम्बा खत आया है। वे स्विट्जरलैंड से वापस आ गई हैं और उनका स्वास्थ्य सतोषजनक नहीं है। मुझे फौरन बुलाया है।"

मैंने हमदर्दी के लहजे में कहा, "मुझे बहुत अफसोस है !" फिर कुछ ठहर कर बोली—"फिर—!"

"फिर क्या, परसों शाम की बोट से मुझे चला जाना चाहिये ।"

मेरी आँखों तले अँधेरा छा गया, "परसों शाम—?"

"हाँ प्यारी ! परसों शाम। मेरे विछोह का तुम्हें दुःख होगा, जेबा ?"

"आह, निर्दयी पुरुष ! मेरे कामना-तरु की जड़ कट गई और तू मुझसे पूछ रहा है कि मुझे विछोह का दुख होगा या नहीं—? निर्बुद्धि पुरुष !"

मेरे चुप रहने पर वह कुछ चकित होकर बोले, "जेबा, तुम मुझे भूल जाओगी ?"

मैं जल गई, "कोशिश करूँगी ।" मेरे मुँह से निकला और मैंने रूमाल अपनी आँखों पर रख लिया ।

वह चकित होकर बोले, "कोशिश, किस बात की कोशिश ?"

मैं सिसकियाँ लेकर बोली, "तुम्हे भूलने की ।"

वे और अधिक चकित हुये । "ऐ, रो रही हो, जेबा ? क्या सचमुच तुम्हे मेरा जाना दुख दे रहा है ? पर उसके साथ तुम यह भी तो कह रही हो कि तुम मुझे भूल जाओगी । मगर जेबा ! मैं तुम्हे नहीं भूलूँगा । मैं जिन्दगी के उन दिनों को सदा याद रक्खूँगा, जब पहले-पहल तुमसे भेंट हुई थी ।"

"और मैं—और मैं उन दिनों को भूलने की कोशिश करूँगी । मैं कभी भी याद न रक्खूँगी ।"

"तुम्हारे ये शब्द मेरा दिल तोड रहे है, जेबा ! मेरी अभिलाषा थी कि जिस तरह मैं तुम्हे सदा याद रक्खूँगा, तुम भी मुझे याद रक्खो ।" मैं बड़ी मुश्किल से बोली, "वैसे मैं कब कहती हूँ कि तुम्हे सचमुच भूल ही जाऊँगी । मैं यह कहती हूँ कि कोशिश करूँगी । अगरचे मुझे यकीन नहीं कि तुम्हे भूल सकूँ । मशहदी, मैं तुम्हे नहीं भूल सकती !"

उन्होंने मेरी आँखों को गौर से देख कर कहा, "क्या सचमुच नहीं भूलोगी ।"

"नही ।"

वे अचानक उठ खडे हुये, "अच्छा जेबा ! खुदा हाफिज !" फिर एक गहरी साँस लेकर बोले, "मैं अब जा रहा हूँ । फिर तुम्हे खुदा हाफिज कहने का मौक़ा न मिलेगा । इसलिये मुझे अभी खुदा हाफिज

र लेने दो। किसे पता, जिन्दगी में फिर कभी मिल भी सकूँ या न मिल सकूँ। वतन पहुँच कर किसे पता, क्या-क्या मुसीबत पेश आयें। अम्मी-जान की मैं सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि उनकी जिन्दगी में मेरी शादी हो जाय। जेबी, लो खुदा हाफिज !"

यह कह कर वह एकदम मुड़ गये। उनके कदमों की आवाज़ जीने पर सुन रही जा रही थी। और मैं सोफे पर आँखें खोले मुर्दे की तरह चुपचाप पड़ी थी। सामने कुछ दम तोड़ रहा था। इधर मेरे दिल के अन्दर मेरी आशायें भी सिसक-सिसक कर दम तोड़ रही थीं।

अँधेरा

आज उन घटनाओं को पाँच वर्ष हो गये। दादी-जान का स्वर्गवास हो गया। फीरोज का विवाह हो गया। शहज़ादा मशरूदी का भी विवाह हो गया। दुनिया में बहुत से परिवर्तन हुये, मगर मैं जीवन के मार्ग पर जहाँ भी थी वहीं खड़ी रह गई।

आह ! प्रेम एक स्त्री और एक पुरुष के जीवन पर कितना विभिन्न प्रभाव डालता है। उसने सताने के लिये स्त्री को ही क्यों चुना ?

जीवन—जिसमें न किसी तरह का आकर्षण था, न मनोहरता—धीरे धीरे बीतता चला जा रहा था। मैं बाग के उन रास्तों पर हसरत से नजर डाला करती थी, जिन रास्तों पर सब से पहले मेरी और मशरूदी की बातें हुई थीं। दिन का अधिक भाग जीवन की उस दोपहर की याद में कट जाता, जब शहज़ादा मशरूदी दादी-अम्मी का हाल पूछने आये थे। आह ! वह बादलों की सियाही, वह सुनसान दोपहर, वह दादी-अम्मा का शयनागार, उनका आना—बिलकुल कल की बातें मालूम होती थीं।

सन्ध्या हो चुकी थी। मार्च की वेदनामय पवन के झोंके चल रहे थे। मैं मकान में अकेली थी। फूलों के बागीचे में वही जीवन की मधुर स्मृतियों ने अपने अन्धकारमय एकान्त को प्रकाशित कर रखा था कि एकाएक किसी ने पुराने रिवाज़ के अनुसार दरवाजे पर पुकारा।

आह !—एक गई-बीती दोपहर को भी किसी ने इसी तरह अचानक दरवाजे को खटखटाया था। मैं एक आह भर कर उठी और दरवाजा खोल दिया।

दरवाजे का खुलना था कि मैं कमजोरी से गिरते-गिरते बची। मेरी आँखे चौंधिया-सी गई। कुछ समझ में न आया कि यह क्या हुआ। वहाँ शहजादा मशहदी खडे थे। बिलकुल उसी तरह जिस तरह आज से पाँच साल पहले आये थे। सिर्फ इतना अन्तर था कि उनके चेहरे पर कही-कहीं जीवन की कटुता के चिह्न दिखाई देने लगे थे।

वे व्याकुल होकर बोले, "जेबा! क्या तुम मुझे भूल गई? एक मुद्दत के बाद तुम्हे देखना कितनी प्रसन्नता की बात है। आज सयोग से मैं इधर से गुजर रहा था। ख्याल हुआ कि एक रात के लिये यहाँ ठहर जाऊँ और तुम्हे देखता जाऊँ।"

मैं टकटकी बाँध कर उन्हें देख रही थी और चुप थी। बीते हुये समय मे से एक दर्द भरी चीख उठ कर मेरे कानों में आ रही थी और प्रतिक्षण अधिक स्पष्ट होती जा रही थी। उसके शोर से घबरा कर आँखें बन्द कर लीं और खड़े-खडे लड़खडा-सी गई।

मशहदी ने बढ कर मुझे सँभाल लिया। "मुझे देख कर तुम्हे खुशी हुई, जेबा?"

जरा रुक कर और सँभल कर मैंने कहा, "बड़ी खुशी हुई! आपकी बड़ी मेहरबानी।"

फिर उनसे अलग होकर बोली, "अन्दर आ जाइये।"

हम दोनों अन्दर जाकर एक कोच पर बैठ गये। वही पुराना कमरा था, वही पुरानी खिड़कियाँ और वही दृश्य—उन्होंने एक उचटती-सी नज़र इधर-उधर डाल कर कहा, "ऐ जेबा, इस वीरान मकान में ज़िन्दगी के दिन तुम किस तरह काटती हो?—तुम्हारी दादी मर गईं, तुमने शादी से इनकार कर दिया। आख़िर कर क्या रही हो? शादी क्यों नहीं कर लेती? इस उजाड़ जिन्दगी से तुम्हारा दिल नहीं घबराता? आख़िर तुमने अपने भविष्य के बारे में क्या सोच रक्खा है?"

क्रोध की एक लपट ने मेरे तन-बदन को फूँक डाला। मैं चिल्ला कर बोली, "जी चाहता है, तुम्हारे मुँह पर एक थप्पड़ मारूँ! तुमने मेरी जिन्दगी बरबाद कर दी। मेरी आशाओं का खून कर डाला। मेरा सब कुछ उजाड़ दिया और अब मुझसे पूछते हो, मैंने अपने भविष्य के बारे में क्या सोच रक्खा है? तुम्हे शरम नहीं आती? आज से छः वर्ष पहले जो जान-लेवा खेल तुमने शुरू किया था, उसे अधूरा छोड़ कर तुम क्यों चले गये थे? तुम्हारे लिये जिन्दगी की बाजी लगाना

कोई बात न थी, मगर मेरा सब कुछ इसी पर निर्भर था। तुमने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया, जिससे मुझे यह धोखा हुआ कि तुम मुझे चाहते हो? तुम्हारे लिये यह एक मजाक था, एक क्षणिक मनोरंजन था, मगर मेरे लिये ज़िन्दगी और मौत का सवाल था।"

मशहदी का चेहरा बर्फ की तरह सफेद पड़ गया। वे चकित होकर मेरी ओर देखने लगे, "जेबा! जेबा! तुम क्या कर रही हो? क्या तुम—तुम को मुझसे प्रेम था? क्या तुमने मेरे ही खातिर फीरोज को छोड़ा था? आह तकदीर—यह बात थी, तो तुमने मुझसे कह क्यों नहीं दिया? कुछ इशारा ही किया होता? मुझे क्या पता था कि तुम मुझ पर जान देती हो? मैं आखिरी वक्त तक इन्तजार करता रहा कि शायद तुम कोई ऐसा शब्द कहो, जिसे सुन कर मैं अपनी प्रेम-कहानी तुम्हें सुनाने का साहस कर सकूँ। उस आखिरी शाम को भी जब कि हम बिछुड रहे थे, तुम सितार लिये बैठी थी, मैंने बडी देर तक इन्तजार किया कि शायद तुम मुझे घर जाने से रोक लो और कहो कि मशहदी, मुझे छोड़ कर न जाओ, तो मैं पहिचान जाता। दुनिया की कोई ताकत मुझे तुमसे अलग न कर सकती। पर आह! मेरी आशाओं के खिलाफ तुमने कहा कि तुम मुझे भूलने की कोशिश करोगी। मेरा दिल टूट गया। मेरी अभिलाषायें सिसक-सिसक कर बेदम हो गईं। मैं निराश अपने घर लौट गया। मरती हुई माँ के आग्रह पर मेरी शादी नवाब नसीर की लड़की से हो गई।"

बाहर प्रकृति पर और भीतर मेरे हृदय पर मृत्यु की-सी गहरी और भारी निस्तब्धता छाई थी। दूर बगीचे की टूटी हुई दीवार के पीछे सूर्य क्षण-प्रति-क्षण नीचे जा रहा था।

मुझे सिर्फ अन्धकार का अनुभव था, जो मुझे निगल लेने के लिये आसमान से उतर रहा था या मेरे जले हुये दिल की राख से उठ रहा था।

कमज़ोर पौधा

लेखक : जनाब हयातुल्ला अन्सारी

पानी भरते-भरते बफातन ने इधर-उधर देखा। अन्य पानी भरने वाली औरतें दूर जा चुकी थी, सिर्फ कनीज पास थी।

"कनिजिया! तुझसे एक बात कहूँ। खबरदार, मुँह से न निकालना, नहीं तो तेरा कुछ नहीं जायगा, मैं मर जाऊँगी। तेरे भले की कहती हूँ।"

कनीज का दिल फक से हो गया। सहसा उसे ध्यान आया कि बफातन ने शब्बीर मियाँ को मुझसे इशारे करते हुये देख लिया है। जरा घबराई हुई बोली, "कहो।"

बफातन घड़ा रख कर कुएँ की जगत पर बैठ गई और कनीज को भी इशारे से बैठा लिया। "शब्बीर मियाँ . " बफतन रुकी, फिर खखार कर बोली—"शब्बीर मियाँ, ऐसा मालूम होता है कि तेरे पीछे लगे हुये है। उनका कुछ नहीं जायगा, तेरी जिन्दगी खराब हो जायगी और तेरे मैया-बाबा का न जाने क्या हो?"

कनीज का रंग उड़ गया। जवाब क्या देती? बफातन उम्र में उसकी माँ के बराबर थी और जो कह रही थी उसके भले को कह रही थी। बफातन यह कह कर घड़ा उठा कर चलती हुई। कनीज ने भी घडा बगल में दबाया और घर की ओर चली।। लेकिन सोच रही थी कि शब्बीर मियाँ के कमरे के नीचे से निकलना जरूर होगा और वे छेड़-छाड़ जरूर करेंगे। कनीज ने अभी तक उनकी छेड़-छाड का कोई जवाब नहीं दिया था, मगर वह इसे पसन्द जरूर करने लगी थी। यही लालच था, जो उसको इतने सवेरे कुएँ पर ले जाता। जब कभी शब्बीर मियाँ कमरे में न मिलते तो उसका मन बैठ-सा जाता और फिर वह दिन भर उदास रहती। अक्सर उसका मन चाहता था कि शब्बीर मियाँ और अधिक छेड़-छाड़ करें और मैं दिखाने को बिगड़ूँ, मगर वे इसकी परवाह न करें।

कुएँ से हटते ही जमींदार साहब का घर था। रास्ते के बराबर-बराबर कन्धों तक ऊँचा चबूतरा था, जिस पर एक बड़ी मरदानी बैठक थी। दरवाजों पर चिकें पड़ी थीं। अन्दर तख्त बिछा था, उस पर साफ चादर तनी थी। बड़ी-बड़ी फैली-फैली कुरसियाँ थीं। कनीज सोचा करती थी कि उन पर बैठने से बडा सुख मिलता होगा।

कनीज की आँखें चिकों पर जमी हुई थी। वह सोच रही थी कि देखे आज शब्बीर मियाँ क्या स्वाँग भरते हैं। कोई आवाज कसते हैं, पानी फेंकते हैं—या ढेला मारते हैं, कि इतने मे पीछे से शब्बीर मियाँ तेजी से आये। बडी फुर्ती से उसके गले मे कोई चीज लाल रग की डाली, फिर उसका मुँह चूम, कूद कर अपने कमरे मे घुस गये।

सुबह की ठढ अभी बाकी थी, और कनीज के हाथ-पाँव भी कुएँ के पानी से भीगे हुये थे, इसलिये उसको हलकी-हलकी सरदी लग रही थी, मगर इस घटना से उसका सारा शरीर जैसे भक से जल उठा। माथे पर पसीने की बूँदें आ गई। दिल धक-धक करने लगा और आँखों के सामने तारे नाचने लगे। उसने घबरा कर चबूतरे का सहारा लिया। घडा उस पर रख दिया और नीचे स्वर मे कहने लगी, "शब्बीर मियाँ! लौंडियों से दिल्लगी अच्छी नहीं। मैं मिट जाऊँगी, आपका कुछ नहीं बिगडेगा।"

न जाने शब्बीर मियाँ कमरे मे थे या नहीं और कनीज की आवाज उन्होंने सुनी या नहीं। कनीज ने हवास ठीक किये और घड़ा को उठा कर घर चली। इधर-उधर देखती जाती थी कि किसी ने देखा तो नहीं, मगर अभी सन्नाटा था, कोई राहगीर नहीं था। चबूतरे के दूसरी ओर छप्पर के नीचे एक आदमी बैलों को खोल रहा था, मगर वह आड़ में था। यह देख कर कनीज के मन को ढाढस हुआ। मगर शब्बीर मियाँ की इस हरकत पर उसको गुस्सा बहुत आया। अगर कोई देख लेता? नफातन ने कभी न कभी देखा जरूर होगा, नहीं तो उसे पता कैसे लगा? इतने में उसकी दृष्टि अपने गले पर पडी, देखा तो शीशे का तराशा हुआ एक हार पड़ा था। छोटे-छोटे बीर-बहूटी जैसे लाल दाने थे, बीच में हारसिंगार जैसा फूल था। चलने से उसमें लहर पैदा होती थी, जिससे वह जगमगाने लगता था। उसको देख कर कनीज के भी दिल में एक लहर सी पैदा हुई। उसका गुस्सा तो बना रहा, मगर साथ ही शब्बीर मियाँ का प्रेम भी उभड़ आया। उसने चुपके से घड़ा एक हाथ से

सँभाल कर दूसरे हाथ से हार उतारा, उसको कमर में खोंस लिया और फिर घर के भीतर चली गई।

माँ चूल्हा लीप रही थी, बाप पलग पर पाँव लटकाये हुक्का गुड-गुड़ा रहा था। छोटा भाई नम्मू मुर्गियाँ खोल रहा था। कनीज ने घडा मिट्टी के बने हुये छोटे से चबूतरे पर रख दिया और बोली—"अब मैं इतने सवेरे पानी लेने नही जाया करूँगी।"

माँ ने यह सुन कर मुँह बिगाड़ लिया, मगर कुछ बोली नहीं। बाप ने सुना तक नहीं। नम्मू बोला, "अब मैं सवेरे-सवेरे मुर्गियाँ नहीं खोला करूँगा।"

यह कह कर उसने मुर्गियों को कनीज की ओर दोनों हाथों से हँका दिया।

कनीज बोली, "देख नम्मू, मुझे यह बातें नहीं अच्छी लगतीं। हर बात की नक़ल करता है।"

नम्मू बोला, "बड़ी वह बनी है, मैं क्या नक़ल करता हूँ। मैंने कोई बात तुम से कही?"

नम्मू ने फिर मुर्गियों को हँकाया। अब की एक मुर्गी फड़फड़ा कर कनीज पर आ गई। कनीज यह कहती हुई उसकी ओर लपकी, "ठहर तो जा, हरामजादे!"

और नम्मू तुरन्त घर के बाहर भाग गया।

माँ यह देख कर बोली, "यह क्या है कनिजिया, तू हर घडी नम्मू के पीछे पड़ी रहती है! उसने तो इतना ही कहा था कि 'मैं सवेरे-सवेरे मुर्गियाँ नहीं खोला करूँगा', इसमें क्या बुराई है?"

कनीज नम्मू की शरारत बताती, मगर उसका दिल भरा हुआ था, रोना आ गया। चुपके से छप्पर के नीचे पलग पर लेट गई और फूट-फूट कर रोने लगी। माँ उठी और मुर्गियों को घर से बाहर निकाल कर दरवाजे बन्द कर लिये। बाप वैसे ही हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। बीच-बीच में खाँसता जाता था। नम्मू बाहर ही था और जब तक कनीज घर में थी उसके लौटने की कोई आशा नहीं थी। थोड़ा-सा रो लेने के बाद कनीज के मन का आवेग निकल गया। उसने चुपके से कमर से हार निकाला और उसको बिछौने पर फैला दिया। अब शब्बीर मियाँ के प्रति उसका ग़ुस्सा बहुत कुछ कम हो चुका था, मगर यह सोच कर वह काँप जाती थी कि अगर कोई देख लेता, तो

क्या होता ! माँ-बाप मारते-मारते क्या हाल कर देते और गाँव में कितनी बदनामी होती । मगर खैर, अब क्या परवाह, किसी ने देखा थोडे ही । शब्बीर मियाँ कितने अच्छे लगते हैं । गोरा-गोरा रग है, साफ-साफ कपडे पहिनते हैं, बाल बहुत दुरुस्त रहते हैं । उनके सफेद पाँव चप्पलों में कैसे अच्छे लगते हैं । जब नेकर पहिने, बन्दूक हाथ मे लिये शिकार से लौटते हैं, तो मालूम होता है कि उनके पास गये और सारे खतरों से दूर हो गये । वह सचमुच प्रेम करते हैं, नहीं तो सवेरे-सवेरे उठ कर घटों मेरे इन्तजार में क्यों बैठे रहते ? मेरे सताने के क्या-क्या ढंग सोचा करते हैं । एक बार उन्होंने प्याला भर लाल रग डाल दिया था । मैं कितनी घबड़ा गई थी कि अम्माँ देखेंगी तो क्या कहेंगी । और फिर कुएँ पर धोने गई, मगर वहाँ पहुँचते-पहुँचते रग उड गया ।

कनीज ने हार गले में पहिन लिया और कोठरी के भीतर जा कर आईना देखने लगी । यहाँ अभी अँधेरा था, इसलिये कुछ साफ नजर नहीं आया । इतने में माँ की आवाज आई, "जमींदार साहब के यहाँ नहीं जायगी ? अभी कोई बुलाने आता होगा, फिर घर में भी मार पड़ेगी ।"

कनीज ने जल्दी से हार उतार कर कमर मे खोंस लिया और बाहर आई । कोयला चबा कर दाँत माँजे, फिर एक टूटी-सी कघी, जिसके आधे-आधे दाँत मैल से बन्द थे, ताक पर से उठा कर माँग ठीक की और जमींदार साहब के यहाँ चली ।

अब उसको दूसरी चिन्ता हुई । बहुधा ऐसा होता कि शब्बीर मियाँ ड्योढी से छिपे मिलते और उसका रास्ता रोक कर खडे हो जाते, गुद-गुदाते और गालो पर हाथ मारते और फिर अपने कमरे मे, जिसका एक दरवाजा ड्योढी में खुलता था, घुस जाते । उसका क्रोध शान्त हो चुका था, और वह मन ही मन इस विचार से कि शब्बीर मियाँ उसकी प्रतीक्षा में खडे होंगे, प्रसन्न हो रही थी, बल्कि अब तो चुम्बन की कल्पना में भी उसको आनन्द मिलता था । मगर इस आनन्द मे एक विचित्र प्रकार का भय मिला हुआ था । ऐसा अज्ञात भय, जो बच्चों को अँधेरे में लगता है । मगर वह कर ही क्या सकती थी ? जमींदार साहब की ड्योढी से गुजरना ही था । कनीज ने यह किया कि फाटक तक तो धीरे-धीरे गई । वहाँ पहुँचने पर थोड़ा रुकी और फिर एकदम दौड़ कर ड्योढी पार कर गई ।

जमींदार साहब की बहू—शब्बीर मियाँ की बडी भावज—सोहर में थी। आजकल कनीज उन्ही का काम करती थी। उनके स्वभाव मे हुकूमत बहुत थी। बात-बात पर कनीज को डाँटा करती थी। अक्सर जरा-सी भूल पर मार भी बैठतीं। आज वे कूँड़ा साफ कराने के लिये देर से इन्तजार कर रही थी। कनीज को देखते ही बरस पड़ी। दूर ही से एक डाँट बताई। पास आते-आते पखा खीच मारा, मगर वार खाली गया। अब किसी दूसरे शस्त्र की खोज हुई। तकिये, चादरें, पानदान, पानी से भरा लोटा सामने था और शायद लोटे की बारी आती मगर जूतियों पर निगाह पड गई। एक उठा कर खींच मारी, जो सयोग से कनीज पर जा पड़ी। अगर सीधी निकली चली जाती तो कनीज की और शामत आ जाती। मगर तूफान अब भी नही थमा। गालियों की बौछार कर ही रही थीं कि शब्बीर मियाँ आ गये। उन्होंने भावज की इस निर्दयता पर दो-चार व्यग्य किये, जिससे वह चुप हो गई और कनीज की जान बच गई।

कनीज ने चुपके से कूँड़ा उठा लिया और साफ करने चली गई। मगर न जाने उसे क्यों ऐसा लग रहा था कि शब्बीर मियाँ उसे घूर रहे है। एक बार काम करते-करते उसने दबी नजरों से पीछे देखा, तो शब्बीर मियाँ से आँखे चार हो गई और दोनों मुस्करा दिये। शब्बीर मियाँ तुरन्त दूसरी ओर देखने लगे। कनीज ने भी झेप कर गर्दन झुका ली।

कनीज के दिल मे अब अपना आदर पैदा हुआ। वह सोचती थी कि शब्बीर मियाँ के यहाँ इतनी लौंडियाँ और मामाएँ है, बाहर नौकर है, चौकीदार है, मगर वे सिर्फ मेरा ही पक्ष लेते हैं। कितनी बडी बात है!

रात को खाना खिला कर कनीज जब घर जाने लगी, तो ड्योढी के पास पहुँच कर उसका दिल धडका। वह दरवाजे पर ठिठकी, और सवेरे वाला उपाय काम में लाना चाहा। मगर न जाने क्यो, वह दौड़ न सकी और साधारण तेज चाल से ड्योढी को पार करना चाहा। शब्बीर मियाँ, जो दरवाजे की ओट मे खडे प्रतीक्षा कर रहे थे, तुरन्त उस पर झपट पडे। उसको दोनों हाथों से दबोच लिया, और अपने ओठ उसके ओंठो पर चिपका दिये। इस अचानक आक्रमण से कनीज बदहवास हो गई और खाना, जो वह घर लिये जा रही थी, हाथ से

छूट पड़ा। शब्बीर मियाँ उसको लेकर अपने कमरे में भाग गये। कनीज ने हाथ-पैर मारे, गिड़गिड़ाई, बुरा-भला कहा, चिल्लाने की धमकी दी। मगर शब्बीर मियाँ अनुभवी थे। उनकी पकड़ मजबूत थी, साथ-साथ आवेग भरे प्रेम-प्रदर्शन और गर्म-गर्म चुम्बनों से उन्होंने उसके इरादे को कमजोर कर दिया। कनीज के शरीर मे बिजली की सी लहर दौड गई। परिणाम का चित्र मस्तिष्क के सामने धुँधला हो गया। उसने एक बार फिर अन्तिम उद्योग करना चाहा, मगर व्यर्थ, समय बीत चुका था। शराब का नशा उसकी रग-रग मे उतरता जा रहा था, धीरे-धीरे नशे और आनन्द का उसके शरीर और मन पर अधिकार हो गया और फिर उसने खुशी-खुशी अपने को तूफानी लहरों मे छोड़ दिया।

(२)

इस घटना को डेढ महीना हो गया। शब्बीर मियाँ की छुट्टियाँ समाप्त हो गईं, और कालेज खुल गया। उन्होंने विभिन्न बहाने से एक-एक दिन, दो-दो दिन देर करना शुरू करदी। उनके पिता दूसरे जमींदारों की तरह मामलों से बेखबर नही रहते थे। इसलिये शब्बीर मियाँ के लिये उनको किसी प्रकार का धोखा देना असम्भव था। दो-एक दिन तो वे शब्बीर मियाँ को तरह देते रहे, फिर उन्हे कूच का हुक्म सुना दिया।

उसी रात को कनीज शब्बीर मियाँ से अहाते के पिछवाडे एक जगह पर, जो पहले से निश्चित कर ली गई थी, मिलने गई। शब्बीर मियाँ बहुत पहले से बैठे राह देख रहे थे। उसको देख कर धीमे से बोले, "कनजिया!"

"जी," फिर कनीज ने खाने की पोटली किनारे रख दी और शब्बीर मियाँ से भिड कर बैठ गई। बोली—"हमारी एक निशानी अपने पास रखियेगा?"

"क्यों नहीं।"

कनीज ने एक रूमाल शब्बीर मियाँ को दिया और बोली—"आप के क़ाबिल तो नहीं है।"

शब्बीर मियाँ ने ध्यान से रूमाल को देखा। साधारण नैनसुख का बना हुआ रूमाल था, जिस पर अंग्रेजी मे भद्दा-सा "शब्बीर" लाल रेशम से कढा था। शब्बीर थोड़ी देर तक उसको चाँद की रोशनी मे,

जो पेड़ से छन-छन कर हलकी-हलकी आ रही थी, देखते रहे, फिर बोले, "तो यह तुमने बनाया है ?"

"मैं क्या बनाती, जी तो यही चाहता था कि किसी तरह खुद बनाना सीख कर बनाती, मगर लौंडियों को काम-धन्धों से कहाँ इतनी छुट्टी.. बनवाया है।"

"बनवाया है।"

"जी।"

"किससे ?"

"आप को इससे क्या, जिससे बनवाया है, वह किसी से कहेगा नहीं।"

"तू बड़ी गधी है। पगली कहीं की, लौंडी फिर लौंडी ! तुझे मेरी इज्जत की जरा परवाह नहीं ?"

कनीज आँसू भर बोली—"दूसरे गाँव मे बनवाया है। बनाने वाले को मालूम भी नही कि यह किसके लिये है.. नही लीजियेगा ?"

कनीज शब्बीर मियाँ के प्रेम में डूबी थी। यह बात उसके छिपाये नही छिपती। अक्सर दूसरों के सामने ऐसी हरकतें कर बैठती कि अगर उनको कोई जरा ध्यान से देखे तो उन दोनों के सम्बन्ध पर सन्देह करने लगे। शब्बीर मियाँ कनीज की इन हरकतों पर बहुत खिसियाते और उन्हीं के ख्याल से कनीज अपने को भरसक सँभाले रखती। कनीज धीरे-धीरे अपने सम्बन्ध के अनुचित होने की बात भूल गई थी। हाँ, अगर कभी शब्बीर मियाँ के विवाह का जिक्र आता या कोई बडा बूढा शब्बीर मियाँ को आशीर्वाद देता—"अल्लाह करे, शादी ब्याह हो" तो कनीज का दिल कुढ जाता और उस समय उसको अपने सम्बन्ध की निर्बलता का अनुभव होता और बात-बात पर ठण्ढी साँसें भरने लगती। मगर फिर शब्बीर मियाँ के पास आते ही सब भूल जाती। इस प्रेम के खेल ने उसके जीवन में जान डाल दी थी, जिसके कारण किसी प्रकार का दुःख उसके दिल में ठहरने ही नहीं पाता था।

शब्बीर मियाँ ने आखिर कनीज का ख्याल करके रूमाल जेब मे रख लिया और फिर बोले—"कल सुबह मैं रवाना हो जाऊँगा।"

"फिर अब क्या होगा ?"

"तू भी कैसी बच्चों की-सी बातें करती है ! होगा क्या, मैं दिसम्बर की छुट्टियों मे फिर आऊँगा।"

कनीज थोड़ी देर तक सिर झुकाये चुप बैठी रही। शब्बीर मियाँ

ने जेब कुछ ढाढस देने की कोशिश की तब वह उनकी छाती पर सिर रख कर रोने लगी और उनके समझाने-बुझाने से भी किसी तरह चुप नहीं हुई। बड़ी मुश्किल से उन्होंने समझा-बुझा कर, डॉट-डपट कर और सुबह मिलने का वायदा करके उसको घर भेज दिया।

शब्बीर मियॉ वहॉ से उठ कर टटोलते हुये पास के तालाब तक चले गये। यहॉ मेढकों की टर्र-टर्र और झींगुरों की तीखी आवाज गूँज रही थी। कीचड़ और भीगी घास की गध हवा में फैली थी। सप्तमी का चॉद डूबने ही वाला था।

वृक्षों की छाया लम्बी हो गई थी और प्रकाश भी मद था। इस दृश्य ने शब्बीर मियॉ के चित्त को कुछ शान्ति दी, नहीं तो उनका मन व्याकुल था, क्योंकि मस्ती का दौर गुजर चुका था—अब नशे का उतार था। कुछ कनीज की बेबसी, कुछ अपनी इज्जत-आबरू का डर, सब से अधिक बद-मिजाज बाप के गुस्सें का खतरा, उनके मन मे उथल-पुथल मचाये था। उनको अपने ऊपर क्रोध आ रहा था और चाहते थे कि अपना दोष किसी न किसी के सिर मढ दे। उस समय उन्हें अपने छोटे भाई की अन्ना याद आ रही थी, जो दो वर्ष पहले उनके जीवन का महत्वपूर्ण अश बन गई थी और उसी के चरित्रों पर उनकी अबोधता भेंट चढी थी। वे अपना सारा दोष उसी के सिर मढते रहे।

थोडी देर के बाद हलकी-हलकी हवा चलने लगी। दूर से कोयल के कूकने की आवाज आ रही थी। शब्बीर मियॉ का मन उसकी आवाज के साथ लहरे लेने लगा। उन्होंने जेब से रूमाल निकाल कर देखा। कनीज का प्रेम उमड़ आया और वे सोचने लगे कि सच पूछो तो सारे दोष का जिम्मेदार मेरा कनीज से प्रेम था। इस प्रेम का परिणाम यह न होता तो क्या होता? क्या मै कनीज से ब्याह कर लेता? रहा प्रेम, सो मेरे दिल में अब भी वैसा ही है। शब्बीर मियाँ ने रूमाल चूमा, सीने से लगाया और फिर कनीज के साथ वफादार रहने की प्रतिज्ञा की।

(३)

कनीज बहुत सवेरे उठ कर शब्बीर मियॉ के कमरे में गई, मगर उनको न पाया। बहुत आश्चर्य हुआ। डेढ महीने मे यह पहला मौका

था कि उन्होंने वायदा पूरा नहीं किया। क्यों नहीं आये? क्या बात है? क्या रूमाल के बारे में बुरा मान गये?

शब्बीर मियाँ इस डर से नहीं आये थे कि शायद फिर कनीज रोने-धोने लगे, या कोई ऐसी बेवकूफी पर बैठे जिससे छिपी-छिपाई बात खुल जाय। कनीज थोड़ी देर तक रास्ता देखती रही, फिर उदास मन घर चली गई।

दस बजे शब्बीर मियाँ सामान वगैरह ठीक करके रवाना होने लगे। माँ और भावज को सलाम किया, उचटती हुई नजर कनीज पर डाली, जो खम्भे से लगी खड़ी थी, और फिर बाहर चले गये। कनीज आँख बचा कर एक कोठरी में घुस गई और वहाँ खूब रोकर मन का उद्वेग शान्त किया।

अब उसने दिसम्बर की छुट्टियों का इन्तजार करना शुरू किया। एक दिन से दूसरा दिन हुआ। एक सप्ताह से दूसरा सप्ताह हुआ। एक महीना गया, दूसरा महीना बीता, और यों ही जीवन के दिन कटने लगे। वही नित्य का काम, वही बीवियों की डाँट, लौंडियों के ताने, सुबह काम करने आना और रात को घर वापस चले जाना। पहले भी उसकी दिनचर्या यही रहा करती थी, मगर अब वह एक बार जीवन का आनन्द ले चुकी थी। अब उसको ऐसा मालूम होता कि वह स्वर्ग में थोड़ी देर रहने के बाद फिर निकाल कर फेंक दी गई। अब वह काम भी खराब करने लगी थी, इसीलिये बीवियों का ध्यान भी उसकी ओर से हट गया था।

दो महीने के बाद उसके स्वास्थ्य में स्पष्ट परिवर्तन होने लगा। दुबली हो गई और चेहरे पर जर्दी आ गई। आँखों के नीचे काले धब्बे पड गये। जो उसको देखता, कहता कि तुझे क्या हो गया है? वह चुप रहती। एक महीना और बीता। अब माँ-बाप का ध्यान उसकी 'बीमारी' की ओर आकर्षित हुआ। कनीज का निकाह दो वर्ष पहले हो चुका था। उन लोगों ने रंग भाँपते ही बिदाई के लिये बात-चीत शुरू की। ससुराल वाले राजी हो गये, मगर उन्होंने पाँच महीने का समय माँगा। और गेहूँ की फसल कटने पर बिदाई की तिथि का निश्चय हुआ। उधर से और जल्दी बिदाई के लिये आग्रह हुआ, जिसको उन लोगों ने बिलकुल अस्वीकार कर दिया। एक महीना और बीता और माँ-बाप की घबराहट और बढ गई। हर एक से कहने लगे,

"कनिजिया को जलन्धर का रोग हो गया है।" जब लोगों ने राय दी कि गॉव के वैद्य जी को दिखाओ या कोस भर पर अस्पताल है वहाँ ले जाओ, तो उन दोनों ने टाल दिया। हॉ, गण्डा-तावीज़ करने लगे। दो एक दवाइयाँ भी खिलाई। आने वाला सकट आँखें निकाले अपने दॉत दिखा रहा था, मगर यह दोनों अपने को धोखे में ही रखना चाहते थे।

कनीज के लिये सब तरह से मुसीबत थी। मॉ ताने देती, बाप सीधे मुँह बात न करता। अगर कभी दोनों में से कोई सहानुभूति दिखाता भी तो इस तरह कि कनीज झेंप जाती। जमींदार साहब के यहॉ डॉट और मार इन दिनों ज्यादा हो गई थी। हॉ, अगर कोई दु.ख का साथी था, तो बफातन। उसने दो-एक दवाइयॉ भी लाकर छिपा-छिपा कर खिलाई।

कनीज खुश थी, क्योंकि दिसम्बर की छुट्टियाँ निकट आ रही थीं। शब्बीर मियॉ आने वाले थे, और उसको विश्वास था कि उनके आते ही दुनिया बदल जायगी और दु:ख की जगह सुख ले लेगा। कनीज अक्सर लोगों से पूछा करती कि छुट्टियॉ कब शुरू होंगी और कब तक रहेंगी। होते-होते छुट्टियॉ आ गईं, मगर कनीज को आश्चर्य था कि शब्बीर मियॉ की मॉ और भावज अब की हमेशा की तरह उनके आने का इन्तजार नहीं कर रही हैं। इसका कारण तो उसने समझना ही नहीं चाहा, लेकिन जब दिन बीतते गये और शब्बीर मियॉ नहीं आये, तो वह स्वय ही समझती गई और उसका दिल अन्दर ही अन्दर टूटता गया। आखिर उसने एक दिन शब्बीर मियॉ की मॉ को यह कहते सुन लिया कि हमने शब्बीर मियॉ को लिखा है कि यहॉ न आओ, बल्कि अपनी बहिन के यहॉ हो आओ।

कनीज बहुत बीमार रहने लगी। जमींदार साहब की बेगम ने उसकी मॉ को बुला कर पॉच रुपये दिये और कहा कि इसका इलाज करो और जब तक अच्छी न हो जाय, काम-काज के लिये न भेजो। कनीज अब घर मे बेकार पड़ी रहती। कभी-कभी दो-एक छोटे-मोटे काम कर देती और उसकी जलन्धर की बीमारी दिन-ब-दिन बढती जाती। माँ सब देखती थी, समझती थी और तरस खाकर चुप हो जाती थी! बाप अक्सर चिल्ला उठता था, "कभी बडे घरों में लड़की नौकर न रक्खी जाय।"

एक दिन रात गये कनीज के माँ-बाप उसको सोता समझ कर आपस मे बाते करने लगे।

माँ ने कहा, "भैया के यहाँ चले चलो, बहुत दिन से वहाँ हम लोग नहीं गये हैं।"

बाप ने कहा, "क्या खराब किस्मत है! खेती को देखूँ कि क्या करूँ?"

माँ बोली, "तुम पहुँचा कर चले आना।"

बाप ने कहा, "कनीज जाने के काबिल भी है?"

माँ बोली, "जायगी नही तो क्या करेगी। अभागिन कहीं की!"

बाप बोला, "मुँह दिखाने के काबिल नहीं रक्खा!"

कनीज सब सुन रही थी। उसने उसी समय निश्चय कर लिया कि कुछ हो, अपने अपवित्र अस्तित्व को माँ-बाप के मकान से हटा ले जाऊँगी? कहाँ जाऊँगी? न उसने यह सवाल सोचा और न सोच सकती थी। रात भर जागती रही। जब उसके ख्याल में दो-तीन घटा रात रह गई, तो धीरे से पलग से उठी और दबे पाँव कोठरी मे चली गई। वहाँ जलाने की लकड़ियाँ और कडों के ढेर थे। उनको कोने मे हटा दिया और टटोल कर एक छोटी-सी हाँडी निकाली। उसमें से शब्बीर मियाँ का दिया हुआ हार निकला और गले मे पहिन लिया। फिर चुपके से दरवाजा खोल कर बाहर निकल गई।

कनीज को समय का ठीक अनुमान नहीं हुआ था। वास्तव में सुबह हो गई थी और लोग बैलों को लिये खेतों की ओर जा रहे थे। उनमें से एक ने कनीज को देखा और पहिचान कर कहा, "कहाँ जा रही है, कनिजिया?"

कनीज घबराई, हिचकिचाई, फिर बोली, "वैद्य जी के घर। अब्बा का जी अच्छा नहीं है।"

"वैद्य जी इधर कहाँ है, तालाब पर जा।" कनीज उसी तरफ मुड गई। उसके लिये तो सब दिशाये समान थीं। थोड़ी दूर जाकर उसने सोचा कि सुबह तो हो गई, तालाब के पार बहुत से जानने वाले मिल जायँगे, इसलिये पहले ही वाला रास्ता ठीक है। मगर जैसे ही वह उलटी तो देखा कि वह आदमी खड़ा है। न जाने रास्ते बताने के लिये, या कनीज का रास्ता भाँपने के लिये। विवश हो वह उसी ओर चली। कुछ दूर जाकर उसको अलीउद्दी चाचा आते दिखाई दिये।

उसने तुरन्त रास्ता बदल दिया और पगडण्डी छोड सड़क पर निकल गई। उधर से बैलगाड़ी आ रही थी। गाडी का परदा गिरा हुआ था, एक कोना उठा था। गाड़ी खैराती हॉक रहा था, जो कनीज के सिर्फ साथ का खेला था। कनीज ने सोचा कि उसको अपना दोस्त बनाना चाहिये। परन्तु पास जाकर खुशामद से कहने लगी, "खैराती, तू सडक को जा रहा है, मुझे भी अपने साथ ले चल।"

"कहाँ जायगी?"

"ख़ाला—मौसी के पास, अपना इलाज कराने।"

"अकेली है?"

"हूँ।"

खैराती भेद भरी मुस्कान के साथ उसकी ओर देखने लगा और बोला, "हूँ।"

कनीज़ खिसिया कर बोली, "अगर ले जाना हो तो वैसा कह, नहीं तो मैं आप चली जाऊँगी।"

कनीज इसलिये और घबरा गई थी कि उसके अलीउद्दी चचा करीब आ रहे थे। खैराती उसको घबराया हुआ देख कर तरस खा गया और बोला, "आ बैठ जा।"

कनोज अलाउद्दी चचा से आड़ मे होकर बैठ गई और परदा गिरा लिया। गाड़ी कच्ची सड़क पर खिसिर-खिसिर करती चलने लगी। अलीउद्दी चचा बराबर से गुजर गये। कनीज के दिल को इतमीनान हुआ और गाड़ी की लचकों का आनन्द लेने लगी। वह जिन्दगी में शिर्फ दो-तीन बार गाड़ी पर बैठी थी, मगर किसी बार इस तरह नहीं कि पूरी की पूरी गाडी उसी के लिये हो। कनीज आराम और इतमीनान पाकर गाड़ी में लेट गई और परदे का एक कोना उठा कर झाँकने लगी। खैराती ऊँचे स्वर में तानें उड़ा रहा था—

मिट न जाये दर्द दिल,
मिट न जाये दर्द दिल! ..

गाड़ी सड़क छोड़ कर एक बाग के बीच से गुजरी, और उसके बाद ऐसे रास्ते पर चलने लगी जिसके दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे पतावर के झुण्ड खडे थे। कनीज बचपन में गॉव के आस-पास के हर भाग मे घूम चुकी थी, इसलिये उसको आश्चर्य हुआ कि खैराती किधर जा रहा है। वह बोली, "किधर जा रहा है?"

निकलते-निकलते ये लोग एक कोस निकल गये। वहाँ किसी शाह साहब का मजार था। इन लोगों ने जाकर दो पैसे चढाये। एक बाबा-जी बैठे थे। दो पैसे पाकर दुआये देने लगे। उनकी निगाह कनीज पर पड़ी। देखा तो एक नवयुवती गले मे शीशे का लाल हार पहिने है, दुपट्टा मुँह पर घूँघट की तरह लटका है और उसकी गोद में एक चौतहे कपड़े पर एक जरा-सा बच्चा है। बाबा जी उसकी ओर देख कर कनीज के बाप से कहने लगे, "पोता है कि नाती?"

कनीज मारे शरम के कट गई और उसने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। बाबाजी इस शर्म को देख कर मुस्कराये और बोले, "पोता है, अल्लाह अच्छा रक्खे—कमा कर दादा-दादी का पेट भरे!"

तीनों मुसाफिरों में मन्नाटा छा गया और वहाँ से चुपचाप चल खड़े हुये।

पन्द्रह दिन बाद जब माँ-बाप कनीज को पहुँचा कर वापस आये, तो मालूम हुआ कि जमींदार साहब के यहाँ विवाह के समान हो रहे है। शब्बीर मियाँ को भाग्य से बड़ी मालदार बीबी मिल रही है।

यह दोनों ठढी सासे भर कर घर के अन्दर चले गये।

यह भी . . वह भी

लेखक : श्री परीश

बम्बई एक बहुत बडा नगर है। दादर से कालबादेवी ट्राम में बैठ कर जायें तो दोनों ओर चार-मंजिला मकानों के फ्लैट्स दिखाई देते हैं। हर एक फ्लैट के बाहर एक छज्जा है। छज्जों के जँगलों पर झुके हुये चेहरे हैं। पीले, जर्द चेहरे—स्त्रियाँ, बच्चे, जवान, बूढ़े—यह नीचे सड़क पर बहते हुये जीवन के तूफान को ध्यान से देखा करते हैं। इनकी सैर भी यही है, सिनेमा भी यही है। इनका मानसिक भोजन भी यही है और शारीरिक भी यही है। यहाँ आपको हर प्रकार के लोग मिलेंगे। मरहठे, पंजाबी, मद्रासी, बंगाली। कमरों के अन्दर आपको माँजे हुये बर्तनों की पंक्तियाँ भी दिखाई देंगी, और दो एक चारपाइयाँ भी। बम्बई में गरीबों के पास एक से अधिक कमरे होना पाप समझा जाता है। उनसे यह पूछना कि उनके घर में कितने कमरे हैं, उन्हें भी लज्जित करना है और अपनी अज्ञानता का भी प्रदर्शन करना है। मगर दादर और कालबादेवी के बीच मध्यम वर्ग के लोग रहते हैं, इसलिये उनके पास दो दो कमरों वाले फ्लैट हैं। ऐसे ही एक फ्लैट पर से पिछले इतवार को एक नवयुवक सड़क पर गिर पड़ा था। वह मरा नहीं, चोटें काफी आई है। अब अस्पताल में है। लोगों ने इस घटना के विभिन्न अर्थ लगाने शुरू कर दिये हैं। उसका सिर चकरा गया था—उसे किसी लड़की से प्रेम था—उसने आत्म-हत्या करने की चेष्टा की थी, इत्यादि, इत्यादि। असली बात किसी को मालूम नहीं। इस कहानी के लेखक को भी नहीं मालूम, लेकिन सम्भव है कि इस घटना का उस इतवार की सुबह की बातों से कुछ सम्बन्ध हो।

उस सुबह भी नित्य की भाँति केशवराव आप्टे की आँख छः बजे खुली थी। नींद के खुमार को दूर करने के लिये उसने दो-तीन करवटें लीं, फिर उठ कर बिस्तर पर बैठ गया। नित्य की भाँति उसका मन अपने अविश्वसनीय भविष्य के विचार से डर रहा था। उसने

खैराती बराबर ताने मारता रहा, "दर्दे दिल हो, वही दर्दे दिल !"

बातचीत की गुञ्जाइश न पाकर कनीज चुप हो गई। रात भर की जागी थी, इसलिये लेटे-लेटे आँख लग गई। मगर थोड़ी ही देर हुई होगी कि उसको एक प्रकार की बेचैनी महसूस हुई और आँख खुल गई—देखा तो गाड़ी उसके दरवाजे पर खड़ी है और खैराती उसके माँ-बाप से बातें कर रहा है।

खैराती ने उसे आवाज दी, "उतरिये बेगम साहिबा, सड़क आ गई।"

बाप डाँट कर बोला—"कनिजिया !"

कनीज डर से काँपती हुई उतरी। उतरते ही बाप ने एक घूँसा मारा और फिर लकड़ी उठा कर चार-पाँच लकड़ियाँ लगाईं। कनीज दरवाजे से निकल कर अँगनाई में गिर पड़ी। बाप ने अब एक लात रसीद की। फिर भी गुस्सा कम नहीं हुआ। वह बराबर गालियाँ दिये जा रहा था। आखिर माँ को तरस आ गया और बोली—"क्या मार डालोगे ? वह बिचारी करती क्या ? तुम्हीं ने उसकी जिन्दगी अजीरन कर दी थी। जमींदार के मकान में नौकर रह कर आज तक कोई लडकी बची है ? अभी पार साल भुन्दू की विधवा के बच्चा हुआ था ."

"चुप ! टर-टर किये जा रही है। मैं गाँव में मुँह दिखाने के काबिल नही रहा !"

पास-पडोस के मर्द और औरतें आकर जमा हो गईं। किस्सा तो उन लोगों को खैराती से मालूम हो गया था और रहा-सहा माँ-बाप की लड़ाई से मालूम हो गया। हर एक अपनी-सी कहने लगा।

"बुरा किया !"

"बुरा किया।"

"बुरा हुआ।"

"कहाँ गई थी ?"

"गई क्यों थी, कोई निकाल रहा था ?"

"पहले से सोच लेती कि ऐसी बात का फल क्या होगा।"

माँ-बाप का बुरा हाल था। सब के सामने दुखड़ा रो रहे थे। एक स्त्री बोली—"ऐसी बातें गरीबों के घर हो ही जाती हैं।"

एक दूसरी स्त्री ने कहा—"इज्जत-आबरू बडे लोगों की बातें है।"

शोर-गुल सुन कर जमींदार साहब के घर से वफ़ातन खबर लेने आई और कनीज के बाप से पूछने लगी—"क्या बात है?"

"क्या बताऊँ? शब्बीर मियाँ ने हम लोगों की आबरू ले ली, और इस हरामजादी को किसी काम का न रक्खा।"

यह सुनते ही दो-तीन आदमी बोल उठे :—

"हैं, हैं, किसी का नाम क्यों लेते हो?"

"क्या कह रहे हो? क्या कह रहे हो?"

"किसी का नाम क्यों लेते हो? अपनी क़िस्मत को कहो, क़िस्मत को!" माँ बोली।

"हाँ, अपना लिक्खा!"

एक बुढ़िया ने वफातन के पास जाकर कहा—"यह न कह देना कि इन लोगों ने किसी का नाम लिया है। क्या फायदा? जो होना था सो हो चुका।"

एक स्त्री बोली—"जमींदार साहब को खफा करके गाव में कैसे रहना होगा?"

दूसरी बोली—"दरिया मे रह कर मगरमच्छ से बैर!"

वफातन चुपके से चली गई। जो जमा हो गये थे, वह भी एक-एक दो-दो करके हटने लगे। दो स्त्रियाँ ठहर गई। उन्होंने कनीज़ को, जो अभी तक मुँह ढँके बेकल पड़ी रही थी, अँगनाई मे उठा कर अन्दर ले जाकर पलग पर लिटाया। चोटें बहुत बेजगह लगी थीं। उनको खूब सेंका गया, हल्दी-चूना लगाया गया, मगर कनीज की बेचैनी में कुछ कमी नहीं हुई। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद वह जोर से चिल्ला उठती। उन लोगों की समझ मे कुछ आया, कुछ नही आया। मगर जो बन पड़ा, करती रहीं। आखिर शाम तक कनीज के पेट मे आठ महीने का एक नन्हा-सा बच्चा पैदा हुआ।

(४)

चार दिन के बाद कनीज़ के माँ-बाप घर नम्मू पर छोड़ मुँह अँधेरे कनीज को लेकर गाँव मे चले और यह निश्चय किया कि उसे कुछ दिनों के लिये उनकी मौसी के पास पहुँचा देना चाहिये, फिर जैसा रग होगा वैसा किया जायगा। क्योंकि उसकी विदाई की ओर से अब तो बिलकुल निराशा ही हो चुकी थी और जमींदार ने भी एलान कर दिया था कि मैं ऐसी खराब "औरत" को घर मे नहीं आने दूँगा। सूरज

इस वर्ष आई० सी० एस० की परीक्षा तीसरी बार दी थी। वह उसका अन्तिम अवसर था। तीन वर्ष पहले जब उसने एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी तब से अब तक वह छः बार विभिन्न प्रतियोगिताओं की परीक्षाओं में बैठ चुका था। पर एक बार भी उसके परिश्रम, उसकी योग्यता और उसके भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया था। बम्बई प्रान्त की सिविल सर्विस की परीक्षा देते समय उसे अपनी सफलता का पूर्ण विश्वास था। वह तो पहले ही से प्रान्त भर में अपनी योग्यता के कारण एक माना हुआ विद्यार्थी था। उसे कोई उम्मीदवार ऐसा नहीं दिखाई देता था, जो उससे बढ़ सके। परीक्षा हुई, परिणाम भी निकला, पर आप्टे सफल न हुआ। पटेल, जिसकी मन्दबुद्धि के कारण सारे क्लास में दिल्लगी उड़ाई जाती थी, अव्वल रहा। गोखले भी यूँ ही पास हो गया। काले, जो इतना खर-दिमाग था कि केशव आप्टे ने उससे कभी बात तक न की थी, 'इंटरव्यू' के बल पर आ गया। और उसके जितने भी मुसलिम मित्र थे या तो वैसे ही पास हो गये या चुनाव में आ गये। केवल उसी को सब जगह असफलता का मुँह देखना पड़ा। प्रान्त की सिविल सर्विस में, फाइनेन्स की परीक्षा में, आई० सी० एस० में हर बार कोई न कोई गड़बड़ अवश्य हो जाती थी। एक बार तो केवल दो नम्बरों की कमी के कारण पास होता-होता रह गया। एक बार इतिहास ने, जिसे वह अपना खास विषय समझता था, उसे धोखा दिया और पिछली बार तो वह केवल 'इंटरव्यू' के कारण पछाड़ा गया। वह केशव आप्टे, जिसको अपने व्यक्तित्व पर गर्व था, योग्यता पर नाज था अपने 'स्पोर्टस-रिकार्ड' पर घमंड था, अपने परीक्षकों पर प्रभाव न डाल सका। और इस बार उसका अंतिम अवसर था। दो महीने में वह पच्चीस वर्ष का हो जायगा। फिर सब सरकारी नौकरियों के दरवाजे उसके लिये बन्द हो जायँगे। खैर, इस बार तो उसकी सफलता में कोई संदेह ही नहीं, लेकिन, लेकिन सहसा केशव के शरीर में एक ठंडी सनसनी-सी फैल कर रह गई। वह फिर लेट गया और उसने चादर को अपने ऊपर खींच लिया। नहीं, यह नहीं होगा, अभी तो उसे सफलता के बाद बहुत कुछ करना है। केशव स्वभावतः साहसी है, उसका हृदय उमंगों से भरा हुआ है, मगर वह अपनी उमंगों का ढिंढोरा नहीं पीटता। वह उमंग ही क्या, जिसके पूरे होने से पहले ही लोगों को पता चल जाय कि वह क्या चाहता है। वह चुपचाप काम

करने वालों में से है। वह अपने मित्रो को, दुनिया को, एक बारगी ही चकित कर देना चाहता है, और उसके बारे में लोग चाहे कुछ ही समझे, लेकिन उसे अपने ऊपर पूर्ण विश्वास है कि उसके लिये कोई भी काम असभव नहीं है। अवसर आने पर वह तैर कर समुद्र भी पार कर सकेगा। बर्फ से ढंकी हुई पहाड़ की चोटी पर भी जा पहुँचेगा। लोगों को क्या मालूम कि केशव के मन क्या है। लोग मूर्ख हैं, अन्धे हैं। उन्हें मूर्ख और अन्धा ही बना रहने दो। वे समझते हैं कि केशव में योग्यता नहीं है, उत्साह नहीं है, उसे अपने पर भरोसा नही है। उन्हे ऐसा मालूम होता है कि केशव पढाई मे मन नही लगाता, ध्यान से नहीं पढता। भला कभी मेहनत भी व्यर्थ गई है। पिछले वर्ष आई० सी० एस० की परीक्षा के परिणाम के बाद जब उसके मिलने वाले उसको ढाडस बँधाने आये थे, तो वे भी कुछ चुभते हुये वाक्य कहे बिना नहीं रहे थे। "यह प्रतियोगिता वाली परीक्षायें कोई यूनीवर्सिटी की परीक्षायें नहीं है कि चार पाठ्य पुस्तकें पढीं और सारे प्रान्त मे प्रथम आ गये! इनमे तो वही पास होते है जो मन लगा कर पढ़े। ऐसी परीक्षाओं के लिये बहुत विस्तृत ज्ञान चाहिये। ये प्रतियोगिता वाली परीक्षायें कोई बच्चों का खेल नहीं है। केशव, क्षमा करना, लेकिन इनके लिये खून-पसीना एक करना पड़ता है। हमारे लड़के विश्व बन्धु ने जब परीक्षा दी थी, तो कई-कई दिन घर से बाहर ही नहीं निकला करता था। कुण्डी लगा कर चौबीस-चौबीस घटे पढता रहता था। विनती-चिरौरी करके उसे थोडा बहुत खाने पीने को बाध्य किया करते थे, नहीं तो उसे खाने-पीने का भी अवकाश कहाँ था?"

केशव के मन मे एक उबाल उठ रहा था। लोग उसे समझते ही नहीं। खूब! खून-पसीना एक करने की जरूरत है! क्यों कोई उसे समझने की चेष्टा नहीं करता? यह जो मेरे चेहरे की रौनक गायब हो गई है, यह किस बात की सूचक है? यह जो मैं सारी-सारी रात जागा करता हूँ, यह किस बात का नतीजा है। खैर, नहीं समझते तो न समझे। केशव दाँत पीसने लगा, क्रोध से उसकी मुट्ठियाँ मिंच गई। अगली बार सही। वह यों ही जरा मुस्कराया। सफल उम्मीदवारों की सूची मे सब से ऊपर मेरा नाम होगा। मुझे कुछ कहने की आवश्यकता न रहेगी। जो आज मुझे ताने दे रहे हैं, जी में जल-भुन जायँगे। आदमी की सफलता दूर के लोगों के लिये प्रसन्नता का कारण होती है, निकट के नातेदारों के लिये नही। लेकिन ऊपर से

उसके सगे कहेंगे कि केशव तुम छिपेरुस्तम निकले ! केशव पहिले कुछ नहीं कहेगा। फिर एक फीकी-सी मुस्कान मुँह पर ले आवेगा और बोलेगा, "यह प्रतियोगिता की परीक्षा किसी की योग्यता का प्रमाण नहीं है। यह तो भाग्य का खेल है। हमारे ही क्लास में देखिये, सब से योग्य लड़के मनमोहन दात्रे और मनसुख मराठे थे, लेकिन पास नहीं हो सके।"

केशव का सारा शरीर खुशी से काँप उठा, सरदी की एक लहर-सी आई और उसने चादर खींच कर अपने सिर को भी छिपा लिया। परिणाम की नकल ब्रजमोहन के घर भी पहुँचेगी। सुषमा भी पढ़ेगी। सुषमा ! जब मैं ब्रजमोहन के घर दुःख प्रकट करने जाऊँगा, कि भाई यह क्या हो गया। खैर ! अगली बार सफल हो जाओगे, तो क्या सुषमा कनखियों से प्रेम और आशा के साथ मेरी ओर न देखेगी ? देखने में कितनी भली लगती है ! वह मुस्कराहट, वे आँखे ! अगर कहीं उसकी नाक इतनी चपटी न होती तो शायद मुझे उससे प्रेम ही हो जाता। वाह ! वाह !! क्या मूर्खता की बातें हैं ! पर सुषमा है सुन्दर ! इसमें सन्देह की गुञ्जाइश नहीं। खैर, मैं चाहे उससे प्रेम न करूँ, उसे तो मुझ पर मरना ही चाहिये। उसे एक आई० सी० एस० से प्रेम है, इसी से वह फूली न समावेगी। लेकिन मेरी बढ़ाई इसी में है कि मैं इस प्रेम के बखेडे से दूर रहूँ। इससे लड़कियाँ के दिल में मेरे लिये और भी आदर बैठेगा। भोली-भाली, सुन्दर लड़कियों का मुझे चोरी-चोरी कनखियों से देखना बहुत अच्छा लगता है। उन निगाहों में मस्ती है। मैं भी झूमने लगता हूँ। मैं अपनी आदत से लाचार हूँ ! जब मेरी बहिन की कोई सहेली उससे मिलने आता है, तो मैं भी उनके पास ही इधर-उधर कहीं मँडराया करता हूँ। इस लिये नहीं कि मुझे अपनी बहिन की सहेलियों को देखने की इच्छा है, बल्कि इसलिये कि मेरी बहिन मुझे बहुत योग्य समझती है। उसको मुझ पर गर्व है। वह अपनी सखियों को मेरे कारनामे सुनाया करती है। हमारे केशव ने बी० ए० में वजीफा लिया था, एम० ए० में फर्स्ट रहा था, टेनिस की टीम का कप्तान था, तैरने में सब से श्रेष्ठ है। और मेरी बहिन के ओठों पर एक हल्की-सी मुस्कराहट दौड़ जाती है। चोरी-चोरी कनखियों से देख कर वह आँखों ही आँखों में मुझे सराहती है। बस, यही मुझ में कमजोरी है। मुझे लड़कियों की प्रशसा-सूचक निगाहे बहुत भाती हैं। शायद यह मेरा वहम ही हो, लेकिन इसी बात की कल्पना कि वे

मेरी ओर चोरी-चोरी देख रही हैं, मेरे लिये काफी है। मेरा ख्याल है वह निगाहे प्रेम-पूर्ण होती हैं। मेरी छाती खुशी से फूल जाती है। लेकिन मेरी शान इसी में है कि मैं तटस्थ बना रहूँ। प्रेम की उठती हुई तरगों का कोई जवाब न दूँ। अब तो आई० सी० एस० बन जाऊँगा। मरीन-ड्राइव पर सैर को निकलूँगा, तो लडकियाँ एक दूसरी को आँख के इशारे से बताएँगी कि इसी का नाम केशव है। यही इस साल आई० सी० एस० बना है। सभी कनखियो से मेरी ओर देखेंगी। किस हिन्दू लड़की को आई० सी० एस० की पत्नी बनने का शौक नही है? मैं सब कुछ समझूँगा, मगर उनके प्रेम का जवाब नही दूँगा। सीधा चलता जाऊँगा, 'जैसे मुझे कुछ मालूम ही नहीं है। कितना आनन्द है लड़कियों के प्रेम को इस प्रकार उकसाने में और अपने को उनसे दूर रखने में! चाँद की तरह दूर! कितनी शक्ति है इसी में!

कुछ देर तक केशवराव आप्टे आँखे बन्द किये इस काल्पनिक प्रेम का आनन्द लूटता रहा, फिर उसने आँखें खोलीं, चादर को सिर से हटाया और छत की ओर देखने लगा। पाँच-दस मिनट तक यों ही ताकता रहा। छत पर नौजवान लडकियों की पक्तियों की पक्तियाँ उसकी ओर आशापूर्ण नेत्रों से देखती चली जा रही थीं। फिर वह उठ कर चारपाई पर बैठ गया और ठोढी को घुटनों पर रख कर टाँगों को बाजुओं में जकड़े हुये सोचने लगा। आज घर नित्य से कुछ अधिक मौन लगता है। दो-चार दिन मे यह सब वीरानी जाती रहेगी। घर पर बाजे बजेंगे, हवन होगा, बताशे बाँटे जायेंगे। नहीं बताशे नहीं, बी० ए० के बाद भी बताशे बाँटे थे। बताशे बडी बेमानी-सी चीज हैं। खैर! हलवाई घर पर तो बैठाना ही पडेगा। नतीजा दो-एक दिन में निकलना ही चाहिये। आई० सी० एस० में पास होकर इस सफलता की खुशी में अच्छी चीज तो बाँटनी ही पडेगी। मैं इन ढकोसलों को न भी मानूँ, पर माताजी कब टलने वाली है। मुझे तो ऐसा लगता है कि वे उस पीर की क़ब्र पर भी, जो सड़क से उस ओर है, एक-आध रुपया चढा आयेंगी। इन स्त्रियों के दिमाग पर भी क्या पत्थर पडे होते है, लेकिन हम पुरुषो की बुद्धि भी कहाँ ठिकाने होती है, नहीं तो सुशीला का कभी का विवाह न हो गया होता! अच्छी भली है। इस साल बी० ए० भी पास कर लिया है। लेकिन लड़के भागते है। उन्हे कोई बडा ससुर चाहिये। कोई कैबिनेट

मिनिस्टर हो, कोई चीफ इजीनीयिर हो, आजकल की कुलीनता तो पैसे मे है। खैर, अब मेरे आई० सी० एस० मे होने के कारण सुशीला के विवाह मे आसानी हो जायगी। अब तो हम बडे भारी दहेज का लालच भी दे सकते है। एक मोटर भी दे देगे। शेवरले डि लक्स मॉडल का कीमत भी चार हजार से कम है। शायद मोरिस एइट ही से काम बन जाय। रामस्वरूप ने अट्ठाइस सौ मे खरीदी है। उसी के द्वारा खरीदेंगे। वह मोटर के सब दूकानदारों को जानता है। अब हम कम से कम दस हजार रुपया उसके विवाह पर लगा सकते हैं। मगर एक बात है, सिर पर कर्जा पहले ही डेढ हजार हो गया है, उस पर दस हजार का यह बोझ और पड़ जायगा, लेकिन बिना ऐसा किये काम कैसे चल सकता है। सुशीला को घर मे सारी उम्र कुँवारी थोडे ही बैठा रक्खेगे। औरों की तरह यह भी जवान लड़की है। इसे भी नवयुवकों के साथ बातचीत करने की इच्छा होती ही होगी। नहीं, नहीं! केशव एकदम बडबड़ा-सा उठा। चारपाई से नीचे पॉव लटका कर उनसे जूता टटोलने लगा। आज घर में अजीब खामोशी-सी छाई है। क्या सभी पूजा करने गये है? आज कौन-सा त्यौहार आ पहुँचा? इन सब को अपने धर्म-कर्म ही की पडी रहती है। ऐसे भगवान् का नाम जपने से जवान लड़कियों का विवाह हो चुका। लड़की के लिये हिन्दू घराने मे जन्म लेना परेशानी का कारण है। पर मुसलमानों की हालत कौन-सी अच्छी होती है? वहाँ भी अच्छे लड़के कहाँ मिलते हैं? हिन्दोस्तानी होना ही पाप है! अग्रेजों को देखो, स्वय लडके-लड़कियाँ अपने जीवन का साथी खोज लिया करते हैं।

केशव ने इधर-उधर निगाह दौड़ाई। यह कमरा कोई बहुत बडा नही है। लेकिन इसमे चार आदमी सोते हैं। केशव, उसका बाप और दो भाई। उसका बाप एक बीमा कम्पनी मे नौकर है और एक सौ पॉच रुपये वेतन पाता है। उनमे से पैंतीस तो किराये ही मे निकल जाते है। एक भाई की आयु नौ साल की है, दूसरे की पॉच साल। दोनों एक साथ जमीन पर सोते है। चारपाई के लिये पैसे नहीं है। होते भी तो रखने के लिये जगह नहीं है। साथ का कमरा भी भरा पड़ा है। वही रसोई-घर का काम देता है और वही स्त्रियों के सोने का कमरा भी है। केशव की माँ और तीनों बहिने वहीं सोती हैं, सभी फर्श पर। यह ठीक है कि उन्हे रात मे चूहे बहुत तग करते हैं, खटमल खून चूस लेते है, मच्छर नींद नहीं आने देते। मगर फिर

भी अमीरों की तरह उन्हे नीद न आने की शिकायत नहीं रहती। दिन मे चारों स्त्रियाँ मानो कोल्हू मे जुती रहती है। रात में टाट बिछा कर जब सब उस पर अपनी मैली दुलाइयाँ बिछाती हैं तो उनकी आँखें नींद से बन्द हुई जाती है। उन्हे नींद आ जाती है, वे सो जाती है। यूँ ही दो एक घटे बीत जाते हैं। तब तक दिन भर की थकावट थोड़ी-थोड़ी उतरने लगती है। उस बहोशी का, जो सारा दिन काम करने के कारण उन पर छा गई थी, नशा कुछ-कुछ कम होने लगता है। उन्हें अनुभव होने लगता है कि उनकी फटी चादरों पर चूहे दौड रहे हैं। मच्छरों की भनभनाहट से बचने के लिये वे बार-बार अपने शरीर और सिर को चादर में छिपा लेती है। खटमलों के काटने से उनका सारा शरीर लाल हो जाता है। उसी अर्द्ध-मूर्छित दशा में वे अपने शरीरों को लगातार खुजाती रहती हैं। बम्बई मे नीचे के मध्यम श्रेणी के लोग ऐसी अवस्था को ही 'गहरी नींद' कहा करते हैं। चारों मेढक की तरह सिमिट कर पड़ी रहती है। इस तरह कम जगह में गुजारा हो जाता है और रसोई-घर के गीले होने से जो गठिया का डर रहता है उसकी सम्भावना कम हो जाती है। केशव आप्टे यह सब कुछ जानता है और उसका बाप भी, लेकिन चारा ही क्या है? केशव चारपाई पर सोता है। उसे मच्छरदानी मिली है। उसी के भविष्य पर तो सारे कुटुम्ब का भविष्य निर्भर है। बाप ने फाके करके, फालतू समय में काम करके, माँ ने औरों के कपडे सी-सीकर, बडी बहिन सुशीला ने लोगों के बच्चे पढा-पढा कर, केशव की प्रतियोगिता वाली परीक्षाओं की बडी-बड़ी फीसें तीन वर्ष तक दी हैं। इसी बीच मे केशव के बाप पर डेढ हजार का कर्ज भी चढ गया है। जब कभी उसके बाप को उस डेढ हज़ार का ख्याल आता है, तो उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा जाता हैं। अगर वह खडा हो तो गिरते-गिरते बचता है, बैठा हो तो उसका सिर उसकी छाती पर झुक जाता है और चुपचाप वह कितनी देर तक इसी दशा मे बैठा रहता है। उन सब की आशाएँ आँखें उठाये केशव को देख रही है। उसके आराम के लिये उसे मच्छरदानी भी मिली है। घर मे यह किसी और के हिस्से में नहीं आई। केशव की पढाई में किसी तरह की असुविधा न हो, उसे मच्छर न सतायें। उन सब को केशव की योग्यता पर पूरा भरोसा है। उन सब को उसका भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है। उसे मच्छरदानी मिलने के कारण उसके कमरे के बाकी सोने वालों को बहुत कष्ट होता है।

मच्छर मच्छरदानी से टकरा कर लौटते हैं और उनसे बदला लेते है। लेकिन खैर!

बाप की चारपाई खाली पडी थी। शायद वह भी पूजा के लिये गया है। मगर दोनों भाई अभी पडे फर्श पर सो रहे थे। कुछ देर तक केशव उन्हे गौर से देखता रहा। बड़ी स्नेहपूर्ण दृष्टि से। फिर वह मुस्कराने लगा। चन्द दिनों में उनका भविष्य भी उज्ज्वल हो जायगा और वे चुंगी के स्कूल मे नहीं जायँगे। आजकल बडे भाई का हफ्तेवार खर्च एक आना है और छोटे भाई का दो पैसा। छोटा तो अपना हिस्सा कभी-कभी खर्च कर लिया करता है, मगर बड़ा हमेशा हफ्ते के अन्त मे अपना हिस्सा वापस ला कर माँ को दे दिया करता है और कहता है, "माँ मुझे इसकी जरूरत ही नहीं पड़ी।" दूसरे लडके जब खोंनचे वाले को घेर लेते है, तो यह नौ साल का बच्चा किताबे लेकर दूर एक वृक्ष के नीचे जा बैठता है। वहाँ उसे खोंनचे वाले की आकर्षक चीजे दिखाई नहीं देती। उसकी ललचा देने वाली पुकार 'चटपटा चना! एक पैसे मे पुड़िया!' भी सुनाई नही देती। बाकी बच्चे अपनी-अपनी जेब से पैसा निकालते भी नही दिखाई देते। भावुक बच्चा है, घर की बातों ही बातों मे उसे पता चल गया है कि सुशीला का विवाह इसलिये रुका हुआ है कि हमारे पास दहेज के लिये पैसे नहीं हैं। सुशीला से उसे बडा प्रेम है। वह हफ्ते-हफ्ते अपने हिस्से की इकन्नी बचा कर सुशीला के दहेज के लिये रुपये इकट्ठा कर रहा है। केशव प्रेम से फूल उठा। उसकी आँखों मे आप ही आप आँसू आ गये। वह उठा और धीरे से उनके पास गया। फिर वह झुका और उसने धीरे मे दोनों बच्चों के माथों को चूम लिया।

नित्य की भाँति नहा-धोकर केशव चाय पीने बैठा। उस समय तक घर के बाकी लोग भी पूजा से वापस आ गये थे। उसने चाय पीना शुरू किया। और साथ ही साथ उस दिन का अखबार भी पढने लगा।

उस दिन अखबार में आई० सी० एस० का परीक्षा-फल भी निकला था।

केशव की नजर परीक्षा-फल पर पड़ी। उसका दिल धडकने लगा। पाँच नाम थे। कालेलकर का नाम भी था। लेकिन उसे अपना नाम कहीं न मिला। उसने चाय का प्याला काँपते हाथों से जमीन पर रख दिया। फिर से परीक्षा-फल को पढा। शायद उससे गलती हुई।

नहीं, उसका नाम नहीं था। बम्बई प्रान्त में से केवल उसका मित्र कालेलकर ही पास हुआ था। साधारण विद्यार्थी था। बाकी दो मद्रास के थे, एक बंगाल का और एक पंजाब का। उसका दिल बैठने लगा। उसको अपने गले में कोई चीज रुकती हुई मालूम हुई। उसके चेहरे की रौनक़ तो पहले ही से प्रतियोगिता वाली परीक्षाओं की भेंट हो चुकी थी, अब उसका चेहरा और भी पीला पड़ गया। माँ और बहिनें उस पर आशा लगाये बैठी थीं। वह उनकी सहमी हुई कामनाओं का सहारा था। माँ ने केशव को चाय का प्याला बिना पिये ही रखते देखा। उसने उसके चेहरे का रंग भी बदलते हुये देखा। उसने धीरे से पूछा, "केशव क्या बात है?" लेकिन अब केशव सँभल चुका था। "कुछ नहीं," उसने कहा, "यह देखो आई० सी० एस० का परीक्षा-फल निकल आया है। मैंने कहा न था कि कालेलकर पास हो जायगा। उसके सफल होने की आशा भी थी।" केशव ने एक ठट्ठा लगाया, जिससे उसकी माँ और बहिनों का कलेजा धकधक करने लगा। केशव कहता गया, "जो पढ़ेंगे वही पास होंगे। मैंने तो पहले ही कह दिया था कि मेरे आने की आशा नहीं है। क़िस्मत वाले आया करते हैं। जो काम करेगा वही सफल होगा—।" और केशव, कालेलकर को बधाई देने के बहाने घर से निकल भागा।

कालेलकर के नाम शाम ही को शिमले से तार पहुँच गया था कि तुम पास हो गये हो। कल अखबारों में परीक्षा-फल निकल जायगा। सब जान जायँगे कि शाहूनाथ कालेलकर अब विद्यार्थी नहीं रहा। बम्बई से देहली और देहली से बम्बई के चक्कर लगाने वाला नवयुवक नहीं रहा। अब वह भारत की सब से अच्छी नौकरी में है, जहाँ धन होगा, शक्ति होगी, सम्मान होगा, लेकिन यह सब बातें तो धीरे-धीरे होती रहेंगी। पहला काम तो यह होगा कि मुझे नाच सीखना होगा। यह जरूरी है। अगर विलायत में जाकर सीखा तो यूँ ही बहुत-सा क़ीमती समय नष्ट हो जायगा। और मैंने सुना है कि जहाज पर भी रात का खाना खाने के बाद नित्य नाच हुआ करता है। क्या वहाँ बूढ़ों की तरह कुरसी पर बैठ कर उन सब को चुपचाप देखा करूँगा। पहले ही इन अंग्रेजों के दिल में हमारे लिये कोई आदर नहीं है। और हो भी कैसे सकता है। हम उनसे मिलते-जुलते ही कब हैं? दूर से ही उन्हें देख कर उनके बारे में अपनी राय क़ायम कर

लिया करते है। उनको हमने कितना बदचलन समझ रक्खा है? जब शाम को उनकी स्त्रियाँ रात का लिबास पहिन कर निकलती हैं, जिनसे उनके शरीर का आधे से अधिक भाग दिखाई देता है, तो हम कहते है कि ऐसे कपडे पहिन कर भी कभी किसी का चालचलन ठीक रहा है? मानो लोगों का चालचलन उनके कपडों ही में छिपा बैठा है। जब अग्रेज स्त्रियाँ और पुरुष इकट्ठे बैठ कर शराब पीते हैं, तो हम सोचते हैं कि क्या उनके विचार बहकते न होंगे। यह सब हमारे अज्ञान का फल है कि हम उनके बारे में ऐसे उलटे-सीधे विचार रखते हैं। मुझे तो दृढ़ विश्वास हो चला है कि अभी तक हम भूल ही रहे हैं। उनके यहाँ तो रिवाज ही ऐसा है। विलायत में इतनी सरदी पड़ती है कि शराब तो पीनी ही पडेगी। थोडी बहुत पी भी ली, तो उससे कौन-सी बुराई आ जायगी? लन्दन की सरदी में सिर्फ दूध पीने से थोडे ही शारीरिक स्वास्थ्य कायम रहेगा। दो ही बातें हैं। या तो लन्दन जाकर भी लिहाफ ओढ कर अपने कमरे में पडा रहूँ, न किसी से बात करूँ, न किसी से मिलूँ, तब तो न ब्राँडी की जरूरत महसूस होगी, न सिगरेट की। लेकिन सरकार हमें तो इसलिये तो विलायत नहीं भेजती कि हम वहाँ जाकर भी कुएँ के मेढक ही बने रहे, उसका तो उद्देश्य यही होता है कि हम अग्रेजों से मिल-जुल कर अच्छी सोसाइटी मे उठना-बैठना सीख जायँ। जब मुझ से कोई दोस्त आकर कहेगा, "चलो आज नाच की दावत है," तो क्या मैं उससे कहूँगा कि मुझे नाच नहीं आता?" यह कहते हुये शर्म से मर नही जाऊँगा? आई० सी० एस० और अग्रेजी नृत्य-कला से अनभिज्ञ! मुझे कोई जानवरों पर शासन नहीं करना है। अग्रेजों की सोसाइटी मे मिलना-जुलना है, किसी दूसरे की पत्नी को, किसी नवयुवती को अपनी बाहों मे थाम कर नाच-घर में नाचने से तो मुझमे कोई बुराई आ नही जायगी। और न उनकी नीयत मे कोई खराबी होगी। यह तो सब हिन्दोस्तानी गँवारों की बाते है। जरा-जरा-सी बात पर हमारा धर्म बिगड़ता है। जरा-सी बात पर हमारी पशुता भडकती है। हम भी अच्छे आदमी है! हम सब को दूर जगल मे ले जाकर गुफाओं में बन्द कर देना चाहिये, 'वहाँ हम न किसी से मिलें, न जुलें। आँखें बन्द किये भगवान् का नाम जपते रहे। हमारे देश में भी तो प्राचीनकाल मे नृत्य को शिक्षा का एक आवश्यक अग समझा जाता था। इससे शारी-रिक स्वास्थ्य बढता है। सारे शरीर मे एक नये जीवन की लहर दौडने

लगती है। यह बहुत अच्छा है कि हिन्दोस्तानियों ने फिर से नाचने में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी है। बीस वर्ष पहले उदयशकर, मेनका और साधना बोस की हँसी उड़ाई जाती थी, अब उन्हीं का आदर होता है। असल में नृत्य तो व्यायाम का एक अच्छा-खासा साधन है। थोडा-सा मनोरजन भी हो जाता है, समय भी कट जाता है और व्यायाम भी हो जाता है। कोई हर्ज नहीं। बम्बई तो नृत्य सिखाने वाले स्कूलों से भरा पड़ा है। रीगल है, एक्सेलसियर है, हैंडन इस्टीट्यूट है, किसी में सीख आऊँगा, किसी को बताने की जरूरत भी नहीं होगी। यहाँ के लोग ख्वाह-मख्वाह सन्देह करने लगते हैं। अग्रेज तो ऐसी बातों में रस्म-रिवाज के बडे पाबन्द होते हैं। उनमें वही चुस्त समझा जाता है, जो सामाजिक प्रथाओं का पूरा-पूरा पालन करता है। उनकी सोसाइटी, और क्लबों की रौनक ही इन्हीं बातों से है। शराब पीने से कैसे इनकार करूँगा? पेश किये हुये सिगरेट को कैसे न लूँगा? सारी पार्टी की चहल-पहल मे फर्क पड़ जायगा। सभी आँखे उठा-उठाकर देखेंगे। अपने लिये न सही, समाज के लिये तो मुझे इन बातों मे हिस्सा लेना ही पडेगा।

कालेलकर को भला नींद कहाँ? उसने करवट बदलते हुये सोचा, अब मुझे अपनी सामाजिक बोल-चाल और उठने-बैठने के तरीके मे बहुत परिवर्त्तन करने पडेगे। सभी एक जैसे हैं। सभी से मिल कर बैठना चाहिये। बडी नौकरी से तो कोई बडा नहीं बन जाता। यह सब बातें अब पुरानी हो गई हैं। लेकिन सब लोगों से घुल-मिल गया तो अफसरी कहाँ रही? दुर्भाग्य से मुझे सबसे हँस कर बोलने की आदत है। इस आदत को छोडना ही पडेगा। दो-तीन बार मुझे जिनखाना क्लब जाने का सयोग हुआ है। कभी मैंने वहाँ किसी आई० सी० एस० को हँसते देखा है? कभी उन्हें ऊँचे ठट्ठे लगाते सुना है? कभी एक दूसरे से हँसी मजाक करते पाया है? इन सब बातों से मनुष्य के सम्मान को चोट लगती है। कैसे चुपचाप अपने सामने शराब का एक गिलास रक्खे बैठे रहते हैं। आई० सी० एस० वाले क्लब मे भी अलग-थलग ही रहते हैं। उनकी सभ्यता, उनके सोचने का ढग, उनका एक दूसरे से बोल-चाल का ढग सबसे अलग है। क्लब मे पाँच-सात आई० सी० एस० हैं। वे एक पार्टी बना कर अलग ही बैठते हैं। एक दूसरे से भी अधिक बात-चीत नही करते। कभी-कभी बिना किसी को सम्बोधित किये उनमे से एक कह उठता है, "असलम का तबादिला नासिक को हो गया है, उसकी जगह राबर्टस आ रहा है।" कोई जवाब नहीं देता। सभी चुप

रहते है। शराब पीते रहते है। सिगरेट के कश लगाते रहते हैं। एक दूसरे की ओर देखते रहते है। थोड़ी देर बाद फिर कोई कह उठता है, "मैं बीस तारीख को दौरे पर जा रहा हूँ। बडी गन्दी सड़के है।"

अपने पर कितना काबू है, कितना सयम है। उनकी हर बात में कितना रोब है! मुझे तो सब से उछल-उछल कर बात करने की आदत है। कितना गँवार लगूँगा! मुझे अपनी आदते सुधारनी पड़ेंगी।

यह जो दो साल हुये मेरी मँगनी हो गई थी, उसको भी अब तोड़ना ही पड़ेगा। एक तो वह लड़की पढ़ी-लिखी नही है, दूसरे वह साधारण मध्यम श्रेणी के कुटुम्ब की है। उससे विवाह करने से तो अखबार में फोटो भी नहीं निकलेगा। अब तो सोसाइटी वेडिंग करना पड़ेगा। इसके लिये मुझे जल्दी करने की जरूरत नहीं है। अभी तो मेरा नाम भी सिवाय मेरे चन्द दोस्तों के किसी को मालूम नहीं है। विलायत से हो आऊँ, तब तक अमीर नौजवान लड़कियों के माता-पिताओं को मेरे विषय में भी कुछ मालूम हो जायगा। आश्चर्य की बात है कि कैसे और कितनी जल्दी कुँवारी लड़कियों के माँ-बापों को अच्छे और सम्बन्ध स्थापन करने योग्य लड़कों के विषय में पता चल जाता है! शायद वे हर प्रतियोगिता वाली परीक्षाओं के नतीजे की सूची गौर से देखा करते है। जब वापस आऊँगा तो बहुत से लोग मुझे पहिचानेगे। अपनी लड़कियों, बहिनो, सालियों, भाँजियों के लिये सिफारिशे करेंगे, और दूसरों से भी कहलवायेंगे। अच्छी लडकी के चुनाव मे काफी आसानी हो जायगी। उन लड़कियों को क्लब में ला-ला कर उनका मुझसे परिचय करावेंगे। मुझे चाय और खाने की दावतों पर बुला-बुला कर उन्हे मुझे दिखावेंगे। यह उसका काढा हुआ मेजपोश है, यह उसका पेंट किया हुआ चित्र है। वह कोने में पडी हुई हारमोनियम की पेटी और वायलेन भी उसी की है। उसे गाने का बहुत शौक है। वह न हो तो घर में किसी का दिल ही न लगे। सरदियों में सभी घर वालों के लिये स्वेटर बुनती है। अब मिस्टर चौधरी के डास-क्लास मे दाखिल हुई है।

लेकिन यह तो दूर की बाते हैं। कालेलकर ने फिर करवट बदलते हुये सोचा, पहले मुझे कल का इन्तजाम करना पडेगा। कल सुबह

अखबार से सब को पता चल जायगा कि मैं आई० सी० एस० बन गया। रिश्तेदारों की तो कोई बात नहीं है, उनसे निपट लूँगा। वे बधाई देंगे। मैं चुपचाप जरा-सा मुस्करा दूँगा। वे कहेंगे, शाहू कुल का नाम उज्ज्वल कर दिया। मैं सिर नीचा करके कहूँगा कि आप ही के आशीर्वाद का फल है। माता जी ने तो अभी से बैण्ड वालों को कल सुबह आने को कह दिया है। पिता जी आज रात को ही घर-घर जा कर मेरी सफलता के बारे में बताते फिर रहे हैं। बहिनें खुशी के मारे फूली नहीं समातीं। छोटी बहिन तो खुशी से इतनी देर रोती रही है कि मैं भी घबरा गया हूँ।

लेकिन मुश्किल दोस्तों से पीछा छुडाने में होगी। मुझे हर एक बात सोच-समझ कर करनी पडेगी, नपी-तुली,जिससे न तो मेरा गॅवारपन प्रकट हो और न मैं अपनी सफलता पर इतनी प्रसन्नता दिखलाऊँ कि उनका दिल दुखे। बेचारों के पास अब रह ही क्या गया है। अभी केशव आप्टे का नहीं पता चला कि वह पास हुआ है या नहीं। उसने तो बहुत मेहनत की थी। योग्य भी बहुत है। ईश्वर करे, वह सफल हो जावे, नहीं तो उसका सारा जीवन ही बेकार हो जायगा और गोखले—खैर, अगर गोखले पास न भी हो सका, तो वह इस दुःख को सह लेगा। काफी अमीर घर का लड़का है..

शाहूनाथ कालेलकर बहुत सवेरे उठा—सात बजते-बजते, नहा-धो कर छुट्टी कर ली और दसवीं बार अखबार मे अपने नाम को देखने लगा। सारे बम्बई प्रान्त में से सिर्फ वही इस साल सफल हुआ था! उस के सभी दोस्त रह गये थे। केशव आप्टे का नाम नहीं था। नरसिंह टाम्बे का भी नहीं। उसका सीना गर्व से फूलने लगा। प्रान्त भर में सिर्फ एक उम्मीदवार सफल, और वह साहूनाथ कालेलकर।

वह सोचने लगा, मुझे लोगों की बधाई कैसे लेनी चाहिये। वह और उसके मॉ-बाप ऊपर की मंजिल में रहते हैं, लेकिन उनका ड्राइङ्ग रूम नीचे है। शाहू नीचे बैठक में आ बैठा। कौन बार-बार उठ कर ऊपर से नीचे आयगा। कुछ देर तक बैठा रहा। उसे अपना वहाँ बैठना अजीब-सा लगने लगा। जो आयगा सोचेगा, बधाई लेने ही के लिये आ बैठा है। वह ड्राइङ्ग रूम को खुला छोड़ कर फिर ऊपर चला गया। थोडी देर अखबार के पन्ने उलटता-पुलटता रहा। उसे अपना ऊपर बैठा रहना भी उचित न मालूम दिया। लोग यह न समझ लें

कि अभिमानी हो गया है। आवाजे दे-देकर ऊपर से बुलाना पड़ता है। वह फिर नीचे आ गया। वह सूट और बूट पहिने हुये था। कुछ देर सोचने पर उसने ऊपर जाकर यह कपडे उतार दिये। नेकटाई लगी रहने दी। पाजामा और चप्पल पहिन कर नीचे आ बैठा। रात ही को बैठक की सफाई कर दी गई थी और किताबें क़ायदे से चुन दी गई थीं। उसने दो-तीन किताबें मेज पर इधर-उधर बिखेर कर रख दीं। एक को खोल कर रख दिया और आप आरामकुरसी पर बैठ, टाँगे सामने मेज पर रख कर अखबार पढने की कोशिश करने लगा।

सेठना सीधा ड्राइङ्ग रूम मे चला आया। उसने भी इस बार परीक्षा दी थी, मगर पास न हो सका। अभी उम्र मे वह छोटा है। वह दो बार और परीक्षा मे बैठ सकता है। इसलिये अभी उसका हौसला नहीं टूटा। उसकी आवाज मे अभी निराशा की कमजोरी नहीं आई। वह आते ही शाहूनाथ की पीठ पर थपकी देकर बोला, "मान गये भई हम तुम्हे, नहीं तो कहाँ तुम, और कहाँ आई० सी० एस०। क़िस्मत वाले हो। पाँसा सीधा पड गया।"

शाहू इस बात की सच्चाई से तो इनकार नही कर सकता था, पर उसको अपने दोस्त के भद्देपन पर गुस्सा आया। अपने को समझता क्या है! कोई ज्यादा पढने से थोड़ी ही सफलता होती है। ईश्वर ने दिमाग दिया है, भूसा नहीं भरा है। फिर बोला, "हाँ भई, क़िस्मत के धनी निकले, नही तो हम जैसों का क्या काम? कुछ पियोगे?"

सेठना बोला, "आज तुम्हारे सिर न पिये तो कब पियेंगे? और दावत कब दे रहे हो?"

"जब चाहो।"

"लेकिन देखो," सेठना ने कुछ व्यग्य से और कुछ गम्भीर होकर कहा, "अब यह पायजामा वगैरह पहिनना छोड़ दो। हमेशा घर पर भी पतलून पहिन कर बैठा करो। मैं एक बात सोच रहा हूँ। अब तक तो तुम थर्ड क्लास मे सफर करने के हिमायती रहे हो, क्यों कि वास्तविक भारत के जीवन की कशमकश तुम्हे यहीं दिखाई देती है।' अब कैसे अपने इस शौक को जारी रख सकोगे?"

कालेलकर ने सोचते हुये जवाब दिया, "बात तो ठीक है, पर क्या मुझे अब उसी क्लास में सफर करना चाहिये? मुझे झूठी बड़ाई पर कोई भरोसा नहीं है, लेकिन फिर भी. ."

"यही तो मैं भी कहता हूँ," सेठना ने व्यंग्यात्मक स्वर में कहा, "तुम गँवारों में मिल कर अपनी इज़्ज़त गँवा बैठोगे। तुम्हें अपनी पोजीशन, अपने सोशल दरजे का ध्यान रखना है। कोई रेलवे स्टेशन पर ही मिल जाता है। किसी अंग्रेज और उसकी मेम ने तुम्हे आई० सी० एस० होते हुये थर्ड क्लास मे देख लिया, तो अपने सब सुनहरे स्वप्नों का अन्त समझो। सारी उम्र असिस्टेन्ट कलक्टर ही बने एँड़ियाँ रगड़ते रहोगे।"

शाहूनाथ कालेलकर को भी यह बात सही मालूम हुई।

सेठना कहता गया, "और फिर उसी गाडी मे तुम्हारे विभाग का कोई छोटा-मोटा आदमी भी बैठा हुआ हो, तो सारे विभाग मे तुम्हारी कोई इज़्ज़त न रहेगी। फिर आजकल की सोसाइटी की लेडीज के विचार भी बहुत अजीब होते हैं। अगर किसी ने तुम्हे इण्टर या थर्ड क्लास मे देख लिया तो क्लब मे तुम से कोई सीधे मुँह बात भी नही करेगी, और तुम्हारी पत्नी की भी तानों से गत बनाई जाया करेगी।"

शाहूनाथ ध्यान से सुनता रहा।

सेठना ने कहा, "अब तो तुम्हे कुछ डासिंग वगैरह भी सीखना चाहिये?"

शाहूनाथ कालेलकर बोला, "मैं भी यही सोच रहा था। मेरी इच्छा एक्सेलसियार इस्टीट्यूट से थोड़ा-सा डास सीखने की है। तुम्हारी क्या राय है?"

सेठना ने सिर हिला कर कहा, "नेकी और फिर पूछ-पूछ।"

सेठना को गये हुये बहुत देर नहीं हुई थी कि शाहू से कुछ शिक्षा लेने गोपाल आ पहुँचा।

गोपाल ने इसी साल बी० ए० की परीक्षा दी थी। जीवन के अगले तीन-चार साल वह प्रतियोगिता वाली परीक्षाओं में लगायगा। चूँकि शाहूनाथ कालेलकर परीक्षा मे पास हो गया है, इसलिये उसकी राय का महत्व एकदम बहुत बढ गया है। वह जो कह देगा उसी को मानने से और लोग सफल होंगे। यही दुनिया का नियम है। इसी को हम योग्यता की कदर कहते है। जो पास हो गया वह योग्य, जो रह गया वह अयोग्य। इसी बात ने कि अब उसकी राय की भी क़द्र होने लगी है, शाहूनाथ को एक और ही आदमी बना दिया है। आत्म-विश्वास बढ गया है। वह गोपाल को नहीं जानता, लेकिन इससे क्या

होता है। शाहू का अपनी बातों के सदा ठीक होने पर विश्वास बढता जाता है। ये आने वाली शक्ति की पहली निशानी है। यह सरकार-मिजाजी की पहली किस्त है।

"नहीं, बहुत अधिक पढने से परीक्षा में सफलता नहीं मिलती", वह गोपाल को बतला रहा है, "मैंने खुद कभी दिन में छः घटे से अधिक नहीं पढा, लेकिन मेरे कई मित्र हैं, केशव आप्टे हैं चौबीस-चौबीस घटे पढ़ता रहता है, योग्य भी गजब का है, मगर बेचारा नहीं आया। बहुत पढने से दिमाग मन्द पड़ जाता है। मेरी राय सदा से यह रही है कि जब तुम पढते-पढते थक जाओ, तो तुरन्त किताबों को छोड़ दो, बाहर घूमने चले जाओ। सिनेमा देखने चले जाओ। तुमने शायद अभी कोई बड़ी परीक्षा नहीं दी। लोग नहीं समझ सकते कि परीक्षा में एक ताजे दिमाग का कितना महत्व होता है। हाँ, नियम पूर्वक काम करो। कभी हिम्मत से अधिक काम करने की चेष्टा न करना। मुझे डर है, बेचारा केशव इसी गलती से रगेड़ में आ गया। मैं उन विद्यार्थियों में से नहीं हैं जो चारपाई छोड़ कर जमीन पर सोते हैं, ताकि सुबह जल्दी उठ सकें—जो रात को तीन-तीन बार कॉफी पीते है ताकि नींद न आ जाय—जो बार-बार आँखों पर ठंढे पानी की छींटें मारते हैं जिसमे कि जागते रहे।

"मैं क्या बताऊँ कि अंग्रेजी के जवाब-मजमून के लिये कौन-कौन-सी किताबें पढनी चाहिये। जवाब-मजमून तो बहुत विस्तृत और गहरे ज्ञान से आता है। खूब नाविल पढो। हाँ स्टाइल (शैली) के लिये गाल्सवर्दी पढ सकते हो। टामस हार्डी भी अच्छा है। इन दोनों की लेखनी मे बल है, शक्ति है। तुम ने गाल्सवर्दी की कहानी "सेब का वृक्ष" पढी है? नहीं? बड़े आश्चर्य की बात है! कमाल की चीज है। मैं तो स्टाइल के लिये हर एक से इसी कहानी के पढने को कहा करता हूँ।

"नही टाउट की लिखी हुई हिस्ट्री पढने से तो नम्बर आ चुके। हाँ, मुकरजी का खुलासा अच्छा है। लेकिन उसके सहारे के लिये तुम्हें अच्छी-अच्छी किताबे पढनी पड़ेगी। 'कैमब्रिज हिस्ट्री' में जो वालपोल का फारेन पालिसी पर अध्याय है, वह अच्छा लिखा हुआ है। जी० एण्ड क्लार्क की 'हिस्ट्री आफ दी लेट स्टुअर्टस' भी तुम्हे पढनी पडेगी। राबर्टस की 'दी हेनोवेरियन्से' खासी अच्छी नहीं है, मगर बीच-

बीच में से पढ जाओ, ट्रैवेलियन को जरूर पढना उसका लिखने का ढग बड़ा दिलचस्प है।

"इन्टरव्यू के लिये मैं ज्यादा क्या कह सकता हूँ। मगर घबराने की कोई जरूरत नहीं है। आखिर परीक्षक भी तो आदमी ही होते हैं। तुम्हे खाने से तो रहे! खूब डट कर और अपने ऊपर विश्वास करके जवाब दो, जिसमें उन पर तुम्हारे व्यक्तित्व का प्रभाव पडे। हाँ देखो, उन्हे कभी धोखा देने की कोशिश न करना। बडे चतुर होते हैं। झट ताड़ जाते हैं। अगर कोई बात न आती हो, तो साफ कह दो कि नहीं आती है। परीक्षकों को भी पता है कि उम्मीदवार 'इन्साइक्लो-पेडिया' नहीं होते।"

गोपाल भी चला गया। कुछ समय बीत गया। केशव दरवाजे पर आकर रुक गया। शाहूनाथ दरवाजे की तरफ पीठ किये बैठा था। उसने केशव को नहीं देखा। केशव एक मिनट तक शाहू को खड़ा देखता रहा। फिर जोर से हँस कर कहने लगा "बधाई-बधाई!" और आगे बढ कर शाहूनाथ की पीठ पर थपकी देने लगा। शाहू उठा। वह हँसा नहीं। केशव की थपकी ने उसके शरीर में एक ठण्ढी सन-सनी फैला दी थी। इस थपकी में उसे एक जीवन की निराशा, एक जवानी की बुझती हुई आग मालूम हुई। उसने मुस्कराने की कोशिश करते हुये कहा, "आओ, बैठो," और केशव का हाथ पकड कर उसे सामने की कुरसी पर बैठा दिया। अपनी कुरसी की गद्दी भी उसे पीछे रखने को दे दी।

दोनों बिना कुछ कहे काफी देर तक एक-दूसरे को देखते रहे। धीरे-धीरे दोनों के मुँह पर मुस्कराहट की हलकी-सी झलक दिखलाई दी। दोनों की मुस्कराहट मे जमीन-आसमान का अन्तर था। शाहू की मुस्कराहट विजय की मुस्कराहट थी। आप ही आप निकली पडती थी। केशव की मुस्कराहट और तरह की थी। स्त्री असफल होने पर रो दिया करती है। पुरुष ऐसी हालतों में मुस्कराया करता है। लेकिन यह मुस्कराहट स्त्रियों के आँसुओं से कहीं ज़्यादा रहस्यमयी है। यह मुस्कराहट मनुष्य अपने खून को जला कर पैदा करता है। इसमे जीवन की अभिलाषाओं की खाक भरी होती है।

शाहू ने पहले बात शुरू की, "तुम्हारा नाम अखबार मे न देख

कर मैं तो ठग रह गया। किसे स्वप्न मे भी ख्याल था कि तुम जैस योग्य आदमी रह जायगा।"

केशव ने कुछ नही कहा, बैठ कर शाहू की ओर देखता रहा।

"और मेरी ? मेरी किसे आशा थी ? लेकिन सच जानो, जब मैं परचे करके आया था, मुझे तभी अपने पास होने का पूरा विश्वास हो गया था। इकनामिक्स के परचे कुछ खास अच्छे नही हुये थे। मगर जो सवाल मुझे नहीं भी आते थे, उन्हे भी मैं बिना किये नही छोड आया; बल्कि अपने मन से जवाब गढ कर जड़ दिये। कभी-कभी ऐसे भी किस्मत लड़ जाया करती है।

"भाई सच बात तो यह है कि ज्यादा पढने से ज्यादा लाभ नहीं होता। आगे किताब रक्खे रहने से क्या लाभ, जब इन्द्रियाँ इतनी तन गई हों कि दिमाग मे कोई बात ठहरती ही न हो—तुम्ही बताओ कि ज्यादा पढने से तुम्हारी क्या हालत हुई ? मुझे तुम्हारे साथ बहुत सहानुभूति है। यह परीक्षक तो बिलकुल गधे होते है। पढ़ाई की कद्र तो करना जानते ही नही। नहीं तो तुम्हारा नाम लिस्ट मे सब से ऊपर होता।"

"ऐसे ही होता है," केशवराव आप्टे ने मुस्कराने की चेष्टा करते हुये कहा।

"इण्टरव्यू मे भी मैं बहुत हौसले से गया था। मैंने कहा, अगर नम्बर नहीं देते, तो जहन्नुम मे जायँ। तुम जैसे योग्य लड़कों मे एक बडा दोष यह होता है कि तुम बहुत डर-डर कर बात करते हो, इससे उन पर कैसे प्रभाव पड़ सकता है ? माफ करना, देखो तुमने पढ-पढ कर क्या हाल बना लिया है ! तुम्हारे व्यक्तित्व को कौन रोबदार कहेगा ? खैर, मुझे पूरी आशा है कि तुम अगली बार जरूर सफल हो जाओगे। तुम्हारा अभी एक और मौका बाकी है न ? और मौका नहीं है ? उफ्फोह ! तब तो बडी बुरी बात है। भविष्य पर कोई विश्वास नहीं किया जा सकता। विशेष कर हिन्दुओं के लिये तो इन प्रतियोगिता वाली परीक्षाओं के सिवा और रक्खा ही क्या है ? आ गये तो पाँच सौ रुपये महीने से वेतन आरम्भ और शासन। न आये तो दर-दर ठोकर खाकर चालीस रुपये की क्लर्की भी नहीं मिलती। यह हमारी शिक्षा-प्रणाली का दोष है। हमारे नवयुवकों की समय से पहले ही आत्मा मार डाली जाती है। वे समय से पहले ही बूढे हो जाते हैं। पच्चीस

वर्ष की आयु तक तो वे अँधेरे में भटकते रहते हैं। दो-चार को तो रोशनी नज़र आ जाती है। बाकी पच्चीस वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते शारीरिक और मानसिक खडहर बन कर रह जाते हैं—अपने से और ससार से विरक्त। अब क्या इरादा है?"

"देखो, अभी तक तो कुछ नही सोचा।" केशव ने अपने दिल पर जोर देते हुये कहा।

"मैं भी ध्यान रक्खूँगा।" शाहूनाथ कालेलकर ने केशव की ओर सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से देखते हुये कहा—"शायद पिताजी के दफ़्तर ही मे कोई जगह खाली हो। पूछूँगा उनसे।"

"मेहरबानी है।" केशव ने किसी न किसी तरह जवाब दिया।

केशवराव आप्टे घर को वापस चला। जैसी दशा में केशव अब था, उसका नकशा खींचने के लिये लेखक लोग आम तौर पर लिखा करते हैं कि उसके गाल पिचक गये थे, आँखें अन्दर को धँस गई थीं और वह लड़खड़ाकर चल रहा था। लेकिन वास्तव मे ऐसा नहीं था। जब केशवराव आप्टे अपने घर को वापस जा रहा था, तो उसके कदम दृढता से उठ रहे थे। उसके होश व हवास कायम दिखाई देते थे। आँखें भी अच्छी-भली थीं। गाल भी पिचके हुये नही थे। देखने मे भी वह और हजारों आदमियों की तरह था, जो इधर से उधर अपने काम पर आ-जा रहे थे। शायद कुछ थोड़ा बहुत-अन्तर भी हो, क्योंकि वह बार-बार अपने को क़ाबू में रखने के लिये अपने दाँतों को मजबूती से मींचता था और बार-बार मुट्ठियों को बन्द करता और खोलता था। वह बिलकुल सीधा एक लाइन मे चल रहा था। दो-तीन बार सामने से आते हुये लोगों से उसकी टक्कर भी हुई। शायद उसकी आँखे देखते हुये भी नहीं देख रही थीं।

घर पहुँच कर वह अपने छज्जे पर जा खड़ा हुआ और नीचे सड़क पर गाड़ियों और आदमियों के बहते हुये दरिया को देखने

लगा। कितनी ही देर ऐसे गुजर गई। घर के सब लोग बाहर अपने काम पर गये हुये थे। परीक्षा-फल जान लेने के बाद वे केशव के पास रह कर उसका दिल नही दुखाना चाहते थे। उनका विचार था कि थोड़ी देर रो-धोकर केशव अपने दिल का गुबार हलका कर लेगा। माँ फिर पूजा करने चली गई थी, शायद ईश्वर से इस दुख को सहन करने के लिये शक्ति माँगने गई हो। एक बहिन बच्चों को बाहर पढाने गई हुई थी ; बाकी दोनों स्कूल मे पढने। दोनों भाई भी म्युनिसिपल स्कूल में पढने गये थे। बाप दफ्तर मे कागजों पर झुका बैठा था।

केशवराव आप्टे के हाथ में एक कागज का टुकड़ा थमा था। बिना जाने-बूझे वह उस कागज के छोटे-छोटे टुकडे करके उनकी गोलियाँ बना कर नीचे फेंक रहा था। नीचे शोर था, सभी प्रकार का। सब प्रकार के लोग थे—मरहठे, पजाबी, गुजराती, बगाली। मोटरें थीं, लारियाँ थीं, बसे थीं, ट्रामे थी। हर चीज जैसे बही जा रही थी। जीवन का सघर्ष था। और ऊपर छज्जे पर खड़ा केशव कागज के टुकड़ों को मसल-मसल कर नीचे फेंक रहा था।

केशवराव आप्टे सिर के बल नीचे पत्थर की पटरी पर आ गिरा। एकदम लोगों का एक बड़ा समूह उसके गिर्द इकट्ठा हो गया। एम-बुलेन्स के लिये टेलीफोन किया गया। नीचे की दूकान वाला, जो केशव के घर वालों को थोड़ा-बहुत जानता था, उसकी माँ को मन्दिर से बुलाने दौडा। वहाँ पूजा हो रही थी। मन्दिर के घटे पूरे जोर से बज रहे थे और लोग उधर खडे पूछ रहे थे—क्यों गिरा ? कैसे गिरा ? सिर मे चक्कर आ गया था ? किसी लड़की से प्रेम था ? आत्म-हत्या करने की कोशिश की थी ? किसी को मालूम नहीं। उस समय भी नहीं मालूम था, अब भी नहीं मालूम। इस कहानी के लेखक को भी नहीं मालूम !

अंकुर

लेखक · श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क"

सग्गियाँ के पडित जयराम की लड़की सेकरी के मन मे बचपन ही से जिस चीज की उत्कट लालसा पैदा हो गई थी, वह सोने के आभूषण थे, और उनमें भी गोखरू तो जैसे उसकी आकाक्षा की चरम-सीमा ही बन गये थे।

सग्गियाँ की गरीब देहातिनों को तो चाँदी की बालियों चूड़ियों, कड़ों और कठों के अतिरिक्त किसी दूसरी चीज का पता भी न था। पर जब गाँव के साहुकार लाला शकरदास की लड़की का विवाह जालन्धर के एक धनाधीश के लड़के से हुआ, तो गहनों में एक चीज आई, जिसकी प्रशसा सब ने मुक्त कण्ठ से की और वह चीज थी गोखरू ! उन दिनों बन्दों का भी रिवाज था और ढोलक पर गाती हुई लड़कियाँ 'जुत्ती सितारियाँ वाली' की तरज पर,

'वे बन्दे ले दे। वे बन्दे ले दे! सोने दे—
भावे तेरी पग्ग बिक जाए!' *

भी गाया करती थीं। पर मध्यम श्रेणी के लोग विवाह में दोनों गहने नहीं दे सकते थे, गोखरू ही दिया करते थे।

सग्गियाँ की देहातिनो के लिये यो तो सभी गहने आँखें खोल देने वाले थे, पर गोखरूओं को देख कर तो आँखो के साथ उनका मुँह भी खुला रह गया। प्रत्येक ने उन्हे हाथो मे ले-लेकर देखा— १६ तोले से कहीं अधिक भारी होंगे। पाँच-साढे पाँच सौ से भी ज्यादा के। और सग्गियाँ की गरीब देहातिनों के लिये ऐसे बहुमूल्य गहने देखना स्वप्न मे भी दुर्लभ था, फिर क्यों न वे उन्हें एक बार हाथ मे लेकर देखने का गर्व अनुभव कर लेतीं।

---

*ऐ मेरे मालिक मुझे बन्दे ले दे, मुझे बन्दे ले दे—
सोने के बन्दे! चाहे तेरी पगडी बिक जाए!

उन्हीं औरतों मे अपनी माँ के साथ सेकरी भी खड़ी थी। उस समय उसे प्रबल इच्छा हुई कि वह भी एक बार इन भारी गोखरूओं को अपने नन्हे हाथों मे लेकर देख ले, पर अपनी इच्छा को माँ के सम्मुख रखने का वह साहस न कर सकी।

माँ तो एक बार गहनों को देख कर फिर अपने काम मे जा लगी। बारात आने को थी और उसे बहुत से काम करने बाकी थे—बेचारी गरीब ब्राह्मणी को जब-तब पुरोहितानी के साथ-साथ बहरी भी बन जाना पड़ा था। पर सेकरी उसके साथ नही गई। माँ और सखी-सहेलियों को छोड़ कर मोहित-सी वह दीवार के साथ सिर लगाये खड़ी रही। उसकी दृष्टि वहीं आभूषणों पर जमी रही। जब गाँव की स्त्रियाँ उन आभूषणों को उठा-उठा कर देखतीं, तो कल्पना ही कल्पना में वह भी ऐसा ही करती, यहाँ तक कि गहनों का स्पर्श तक उसे अपनी अँगुलियों मे महसूस होता।

जब नव-वधू को उबटन लगा कर नहलाया गया और उसे गहने पहिनाये गये, तो सेकरी की दृष्टि उसकी कलाइयों पर ही जम गई।

तभी एक सहेली भागी-भागी आई और ईंट का छोटा-सा रोड़ा दिखाते हुये उसने कहा—"देख मैं यह लाई हूँ। आ ढोलक बजाएँ," पर सेकरी वहाँ से नहीं हिली।

बाहर बाजे बजने लगे और 'बारात आई, बारात आई' का शोर मच गया। स्त्रियाँ और बच्चे सब छतों पर जा चढ़े और कुछ देर में विवाह के मीठे गान वायु मे गूँज उठे।

सेकरी वहाँ से नहीं हिली, बल्कि जब वधू अकेली रह गई, तो वह सकुचाती-सकुचाती उसके पास जा बैठी। चुपचाप घुटनो पर अपना सुन्दर मुखड़ा रक्खे वधू अपने मेहदी रँगे अँगूठे से धरती कुरेद रही थी; उसका ध्यान जाने किधर था? शायद वह एक ही दिन म अपने बहू बन जाने की बात सोच रही थी। अपनी कलाइयों पर जमी हुई सेकरी की दृष्टि और उस दृष्टि की उत्सुकता को देख कर वह मुस्कराई। सेकरी की अँगुलियाँ, तब जैसे अनजाने ही मे, गोखरूओं को छूने का प्रयास कर रही थीं। दुल्हिन ने हाथ ढीला छोड दिया और सेकरी ने उन गोखरूओं और उनके साथ की चूड़ियों को जी भर देखा और उसके हृदय का उल्लास मुख पर प्रतिबिम्बित हो उठा।

तब दुल्हिन हॅसी। उसने इधर-उधर देखा और फिर मुस्कराते हुए बोली—"तुम्हारे विवाह मे भी ऐसे गोखरू पड़ेगे।"

कहते हैं २४ घटे में किसी न किसी क्षण प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा पर सरस्वती आ बैठती है। दुल्हिन की जबान पर भी उस समय सरस्वती ही आ बैठी थी। क्योंकि जब सेंकरी के विवाह में वर पक्ष की ओर से आई हुई 'वरी'* के थालों पर से पतला हरा बुर्जी कागज उठाया गया, तो गहनों के थाल मे दूसरे स्वर्ण आभूषणों के अतिरिक्त चमकते हुये भारी गोखरूओं की जोडी भी थी। देख कर सेंकरी मन में फूली न समाई थी। जब से उबटन मल कर नहलाया गया और उसकी कुन्दन-सी कलाइयों में गोखरू डाले गये, तो जैसे ये शरीर का अग ही दिखाई देने लगे। सेंकरी की आयु उस समय केवल १३ वर्ष की थी, पर उसके स्वस्थ अङ्ग जवानी के स्वर्ण-प्रभात में सुगठित और सुडौल साँचे में ढले हुये प्रतीत होते थे। गोखरू उसकी कलाइयों में ऐसे फिट बैठे, कि कुछ क्षण बाद जब सेंकरी को उन मे से एक को वहाँ से खिसकाना पड़ा, तो उसके स्थान पर रक्त इकट्ठा हो जाने से लाल-सी चूडी बन गई। बहुत देर तक विमुग्ध-सी वह उसे देखती रही और फिर हाथों मे पडे मौली के लम्बे-लम्बे तारों में बँधे कलीरों और नाक में पडी हुई बड़ी शिकारपुरी नथ को सँभालती हुई वह उठी और जाकर सहेलियों को अपना एक-एक गहना, उसकी बनावट, उसकी जुड़ाई और गढाई दिखाने लगी। तब रह-रह कर उसे इच्छा होती—काश वह बधू, वह उनके यजमान शकरदास की लडकी भी वहाँ होती, तो अपनी भविष्य-वाणी के प्रभाव को देखती।

सेंकरी के उल्लास तथा कुतूहल को देख कर बडी-बूढियाँ अपने पोपले मुँह लिये हुये हँसती और उसके भाग्य को सराहती हुई दुआएँ देतीं। भिखमगे ब्राह्मण की लड़की इतने बडे घर जा रही है, इतने धनी के घर, तो वे क्यों न उसके भाग्य को सराहे? पर गाँव की युवतियों को उसके भाग्य के प्रति कोई ऐसी ईर्ष्या नहीं हुई थी। इतने बहु-मूल्य सुन्दर गहने, उस दरिद्र ब्राह्मण की लडकी के अग में पडे देख यदि कुछ को जलन हुई भी, तो यह जान कर कि चारपाई पर चारपाई जा रही है और ५० वर्षीय दूल्हे की पहली पत्नी अभी बैठी

*वर पक्ष की ओर से आए हुये गहने और कपडे।

है। उनमे से बहुतों ने मुँह- बिचका-बिचका कर कह दिया था—"ससार में सब कुछ तो गहने ही नहीं . "

× × ×

सेकरी के पति पंडित महेश्वरदयाल जालधर के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। उन्होंने ज्योतिष-विद्या कहाँ से सीखी, इस सम्बन्ध में कई तरह की बाते प्रसिद्ध हैं। कोई कुछ कहते हैं, कोई कुछ। पर प्रचलित कहानी यह है कि वे "पट-फेरा" करते थे, मतलब यह है कि रँगने और कूटने के बाद रेशम के जो तार आपस में उलझ जाते है, उनकी नये सिरे से गुच्छियाँ बनाते थे। किन्तु जापानी माल आने से जहाँ दूसरे घरेलू धधों को हानि पहुँची, वहाँ जालन्धर का यह प्रसिद्ध व्यवसाय भी समाप्त हो गया। तब लाला लोगों ने तो शराफे और बजाजी की शरण ली, पर पडितजी के लिये तो पुरखों के व्यवसाय का दरवाजा खुला था। कुछ सोये हुये यजमान जा जगाये, कुछ दबे हुये उखाड़ डाले, और कुछ मुर्दे जिन्दा किये और धड़ल्ले से पुरोहिताई आरम्भ कर दी। इससे भी सतोष न हुआ तो एक दिन खोपड़ी घुटा, लम्बी चोटी को गाँठ दे, माथे पर चन्दन के लम्बे-लम्बे टीके लगा कर और गले में रामनाम का दुपट्टा लपेट आपने अपने ज्योतिषी होने का एलान कर दिया।

वैसे ज्योतिषी के नाते आपकी धाक शायद उम्र भर न जमती, पर भाग्य बलवान था। सट्टे की आपको पहले ही कुछ लत थी और ज्यों ज्यों सारे पजाब में और उसके फलस्वरूप जालन्धर मे सट्टे का बाजार गर्म होता जाता, आपकी यह लत भी बढ़ती जाती। तभी ऐसा हुआ कि दो-तीन बार आपको दो-दो हजार रुपया सट्टे में आ गया। बस फिर क्या था, सारा दिन 'सट्टई' आपको घेरे रहती। पडितजी भी सकेतों मे बातें करते। जिनका नम्बर आ जाता, वे उनकी प्रशसा करते, नजराने देते, जिनका न आता वे समझते कि उन्होंने पडितजी का सकेत समझने में गलती की है। अगला नम्बर पाने की गर्ज से वे और नजराने देते। दोनों ही तरह पडितजी की चाँदी थी। अल्प काल ही मे आपने जालन्धर मे ही अपना एक बड़ा मकान और दो दूकानें बनवा ली, और नकद भी काफी जमा कर लिया।

इस सब वैभव के बावजूद भी पडितजी दुःखी थे। कारण यह कि उनकी इस सम्पत्ति को उनके बाद सँभालने वाला कोई न था।

पत्नी थी, पर बच्चा कोई न हुआ था और आयु उनकी ५० वे वर्ष को पार कर रही थी। इन्हीं दिनों मे जालन्धर की एक बारात के साथ वे सगिग्याँ गये। तभी जयराम पुरोहित के साथ उनकी भेंट हुई और तभी कचन जैसी उसकी लडकी को देख कर उनके मुँह में लार टपक आई। इतना हुआ तो फिर सब प्रबन्ध कर लेना ज्योतिषी महेश्वर दयाल के लिये कुछ कठिन न था। पडित जयराम तथा उनकी ब्राह्मणी को, इस अपनी कड़वी बेल की तरह बढने वाली लड़की को किसी न किसी तरह पार लगाने की चिन्ता थी। फिर वे ऐसा सुअवसर कैसे चूकते और खास कर, जब बातों-बातों में अपनी जायदाद का विवरण देते हुये ज्योतिषी जी ने, उस सुख का भी जिक्र कर दिया था, जो उनके घर में बड़ी बेचैनी से नववधू की प्रतीक्षा कर रहा था। दोनों ओर से सब खर्च का प्रबन्ध भी उन्होंने अपने जिम्मे लिया और इस प्रकार लडकी को योग्य और धनी वर के हाथों सौंप कर पडित जयराम और उनकी पत्नी ने सुख की साँस ली और अपनी इस जायदाद का उत्तराधिकारी पाने की आशा के पुनः अकुरित होने से ज्योतिषी महेश्वर दयाल एक बार फिर वृद्ध से युवा हो उठे।

× × × ×

ससुराल आने पर गहनों के प्रति सेकरी का मोह और भी बढ गया। विवाह के बहु-मूल्य आभूषणों के अतिरिक्त माथे का चॉद, हाथों के कडे, बाजू का अनन्त, सिर की शिकार-पट्टी और गले का रानीहार पडितजी ने उसे बनवा दिये। कई तरह की साडियॉ ला दी। अपने अभाव को अपनी श्रद्धा से पूरा करना अनायास ही वृद्ध प्रेमी जान जाते है। किन्तु जिस प्रकार बच्चा एक खिलौना पाकर दूसरे के लिये लालायित होता रहता है, सेकरी भी एक चीज पाकर दूसरी की फरमाइश कर देती और पडित जी तुरन्त ला देते। किन्तु दोनों के दृष्टिकोण मे गहरा अन्तर था। बच्चा खिलौना पाकर अपनी कृतज्ञता से मॉ-बाप को प्रसन्न करने के बदले अपने हमजोलियों के मन मे ईर्ष्या उत्पन्न करना, उन्हे अपनी इस नई सम्पत्ति से प्रभावित करना अधिक पसन्द करता है। इसी प्रकार सेकरी भी जब आभूषण पहिनती तो पडितजी के पास बैठने के बदले अपनी सहेलियों को वह सब दिखाने के लिये उसका मन व्यग्र हो उठता। पडितजी अपने घुटे हुये सिर पर हाथ फेरते हुये ललचाई हुई आँखों से लावण्य की इस अनुपम मूर्त्ति को

देखते हुये कहते, "तुम तो स्वर्ग की अप्सरा हो," और उसे अपनी ओर खींचने का प्रयास करते। पर वह अपने मायके जाने के लिये मचल पड़ती।

वास्तव मे गहने-कपडे पहिनते-पहिनते एक विचित्र प्रकार की कुसमुसाहट उसके शरीर में पैदा हो जाती थी, एक अज्ञात आकांक्षा उसके हृदय में सुलगने लगती थी। किन्तु ज्योतिषीजी की ओर से उसके मन में कुछ भय-सा बना रहता था और वह उनके सामने से एकदम भाग जाना चाहती थी। इसीलिये सदैव ऐसे अवसरों पर किसी न किसी तरह रो-रुला कर मायके चली जाती थी। वहाँ जब उसकी सहेलियाँ उल्लास तथा ईर्ष्या के मिले-जुले भावों के साथ उसका अभिनन्दन करती, उसके गहनों को हाथों मे ले-लेकर हँसी-हँसी मे पहिन-पहिन कर देखतीं, तो वह कृतकृत्य हो जाती।

उसकी सहेलियाँ सोचतीं—काश, हमें इनमें से एक भी गहना प्राप्त हो सकता! और उनकी माताएँ उस ब्राह्मण की छोकरी को इतने बहुमूल्य गहनों-कपड़ों से लदा देख कर एक दीर्घ निश्वास छोड़तीं और सोचतीं—क्यों न उनकी लड़कियों को भी ऐसा घर मिला? पति उम्र का पका हुआ होता तो क्या, लड़की तो राज भोगती।

किन्तु इस राज्य की वास्तविकता क्या है, शीघ्र ही सेंकरी को इसका पता चल गया। बात यह हुई कि इस अपने पति के राजा होने पर भी सेंकरी को वही अपने गाँव का गरीब घर अच्छा लगने लगा। धीरे-धीरे उसके मायके रहने की अवधि बढती गई, यहाँ तक कि एक बार जब पडितजी उसे लेने गये तो उसने जाने से साफ इनकार कर दिया। उसने ऐसा क्यों किया, इसका भलीभाँति विश्लेषण तो वह स्वय भी न कर पाई थी, पर उस राज-घर मे जैसे उसका दम घुटने लगता था। तब पडितजी ने सोने के बडे-बडे मनकों की कठी बनवा देने का वायदा किया था। माँ ने समझाया था—"बेटी, पति ही नारी का स्वामी है, उसका देवता है, यहाँ तक कि उसका परमेश्वर भी वही है। जैसे वह रक्खे, जिस हाल मे रक्खे, उसी मे रहना चाहिये।" और पिता ने उसे पहले झिड़कियाँ दी थीं, और फिर वायदा किया था कि उसे शीघ्र ही बुला लिया जायगा। तब कहीं जाकर सेंकरी तैयार हुई थी, पर जब फिर उसने मैके जाने की जिद की तो पडितजी ने उसे झिड़क दिया—"वहाँ किससे आशनाई है, जो नित उठ कर भागती रहती है?" उन्होंने कटु स्वर मे कहा था।

सेकरी सन्न खड़ी रह गई थी। वह रोई न थी, चिल्लाई भी न थी, बस मूक मर्माहत खड़ी रही थी। क्षोभ से उसका गला भर आया था। तब उसने कपडे उतार फेंके थे, गहने ट्रंक मे बन्द कर दिये थे, सुहाग की निशानी-केवल दो-दो चूडियाँ हाथों मे पड़ी रहने दी थीं और फैसला कर लिया था कि अब चाहे मर भी जाय तो मायके न जायगी।

वहीं खडे-खडे तब उसके सामने गाँव के कई भोलेभाले युवको के चित्र फिर गये थे, जिनको वह 'भाई' कहती थी। दिल को टटोल कर उसने देखा था, क्या इनमें किसी के साथ उसकी आशनाई थी? हलकी-सी मुहब्बत भी थी? दिल में उसे कहीं भी कुछ न दिखाई दिया था, हलकी-सी लहर भी नहीं, उसके भोले-भाले दिल ने अभी पुरुषों को इस रूप में देखना भी न सीखा था। और तब वह फफक-फफक कर रो उठी थी।

ज्योतिषीजी ने देखा—निशाना बहुत आगे पड़ा है। स्वय ही ख्याल आया कि उससे ज्यादती हो गई है। तब उन्होंने उसे शान्त करने का प्रयास किया। खिसियानी-सी हँसी भी हँसे, गुदगुदाया भी, पर सेंकरी न खिली।

दूसरे दिन पंडितजी सराफ की दूकान से सोने के बड़े-बडे मनकों वाली सुन्दर कठी ले आये। सेंकरी ने उसे देखा, क्षण भर के लिये उसकी आँखों में चमक पैदा हुई, पर ज्योतिषीजी की बात का ध्यान आ जाने से दूसरे क्षण वह मिट गई। पडितजी ने जब डिब्बा उसे दिया, तो उसने चुपचाप उसे ले कर रख लिया। लाख उन्होंने कहा कि इसे जरा पहिन कर दिखा दो, देखें तो सही तुम्हारे गले मे कैसी लगती है, पर सेंकरी चुप बैठी रही। हार कर उन्होंने कोसा भी, ताने भी दिये, झल्लाये भी और फिर उठ कर बैठक में चले गये और जाने कितनी जन्म-पत्रियाँ खोल-खोल कर ढेर लगा उनमें बैठ गये।

उस वक्त तो सेंकरी ने वह कण्ठी नही पहिनी, पर जब पडितजी चले गये, तो उसे पहिन कर देखने के लिये उसका मन बेचैन होने लगा। एक बार उसने कण्ठी को डिब्बे से निकाला, पर फिर वहीं रख दिया। तभी हदा दान-स्वरूप दिया जाने वाला भोजन लेने वाली ब्राह्मणी परमेशरी का लडका थाली उठाये-उठाये आया—हँसमुख, नटखट, बाईस-तेईस वर्ष की उम्र, स्वभाव मे कुछ भोलापन।

'आशनाई'—अनजाने ही में सेंकरी के मस्तिष्क में एक शब्द गूँज गया और उसने ब्राह्मण कुमार की ओर दबी निगाह से देखा भी, पर झट ही अपनी निगाहें फेर ली।

थाली के ऊपर से साफा हटा कर लड़के ने कटोरियाँ निकाल कर रख दीं।

वही बैठे-बैठे सेकरी ने पूछा, "तेरी माँ क्यो नही आई आज ?"

"बीमार है जी", लड़के ने उत्तर दिया और फिर सेकरी के पास आकर मुस्कराते हुये उसने कहा—"यह कण्ठी तो बड़ी सुन्दर है, कितने को आई है ?"

सेकरी ने कहा—"मालूम नही, पडितजी लाये हैं।" और तभी उसका मन हुआ कण्ठी पहिन ले।

युवक ने कहा—"पहिनिये तो सही। ठीक आ गई आपके लिए।" और यह कह कर वह जरा-सा हँस दिया।

सेकरी ने तनिक आँख उठा कर उसकी ओर देखा। उसे उसकी हँसी बहुत सुन्दर लगी, साथ ही समस्त शरीर मे एक झुरझुरी-सी दौड़ गई। "मैंने देखी तो नही"—और यह कहते हुये मुस्करा कर और फिर कनखियो से ब्राह्मण कुमार की ओर देख कर सेकरी कण्ठी पहिनने लगी।

कठी का हुक गले के पीछे की ओर था। नया होने के कारण और गर्दन में बिलकुल फिट आने के कारण प्रयास करने पर भी उसे न लगा सकी। तब ब्राह्मण युवक ने सरल भाव से हँसते हुये आगे बढ कर उसे लगा दिया। ऐसा करते समय उसकी अँगुलियाँ सेंकरी की कोमल गर्दन से छू गई! सेकरी के समस्त शरीर में फिर सनसनी-सी दौड गई।

हुक लगा कर सेकरी की ओर मुग्ध-दृष्टि से देखते हुये ब्राह्मण ने कहा—"बहुत सुन्दर लगती है यह आपको।"

तभी पडितजी एक लटकती हुई जन्मपत्री हाथ में लिये दाखिल हुये। उनकी आँखों में खून उतर आया, पर दूसरे क्षण बरबस मुस्कराहट ओठों पर लाकर उन्होंने कहा—"वाह! कैसी सुन्दर लगती है!"

सेकरी का मन प्रसन्न था। वह हँस दी थी। और इसके बाद वह सारा दिन खुश-खुश रही थी, और जब वह युवक हदा लेकर चला गया था, तो अपने कमरे मे जाकर किवाड़ बन्द करके उसने सब गहने-

कपडे पहिने थे और वह कठी भी अपने गले मे लगाई थी। तभी उसने महसूस किया था कि जैसे उस ब्राह्मण कुमार की अँगुलियाँ उसकी गर्दन को स्पर्श कर रही है और इस प्रीति के साथ ही उसके शरीर की नस-नस में वैसी ही फुरफुरी दौड गई और फिर कुछ विचित्र कुसमुसाहट-सी होने लगी, और अज्ञात-सी आकाक्षा की आग, जो उसके हृदय मे कहीं दबी पड़ी थी, फिर सुलग उठी थी।

उस रात को सेंकरी के स्वप्नों की दुनिया आबाद रही थी। उस दुनिया का एक राजा भी था और एक रानी भी। राजा और रानी, जैसे आदि काल के बिछुडे, किसी नन्दन-कानन में आ मिले थे। रानी ने उपालम्भ भरे स्वर में कहा था—'तुम आते नहीं मेरे राजा, और ये पहाड़ से दिन मुझसे काटे नहीं कटते और रातें ' और यह कहते रानी की आँखें सजल हो गई थीं। तब मुस्कराते राजा ने कहा था, 'तुम घबराओ नहीं रानी, इसी नन्दन-वन में हम-तुम रोज मिला करेंगे।'

लेकिन दूसरे दिन जब सेंकरी का मन अन्य दिनों की अपेक्षा हलका था, और सब गहने-कपडे न सही, आसमानी रग की साडी के साथ उसने अपने प्रिय गोखरू और कर्णफूल और चूडियाँ और मोटे-मोटे सोने के मनकों की वह सुन्दर कठी पहिनी थी, तो उसके सपनों का वह राजा न आया था।

परमेशरी ब्राह्मण के स्थान पर हटा लेने के लिये पडितजी ने माया को लगा लिया था।

सारे दिन सेंकरी का शरीर शिथिल रहा था, अपने कमरे में वह अन्यमनस्क-सी लेटी रही थी, और पहले से कहीं ज्यादा उसे अपने मायके की, अपनी सहेलियों की याद सताने लगी थी। गली में पडित जी ने उसका आन-जाना बन्द कर दिया था। मायके वह न जा-आ सकती थी, और हँसमुख परमेशरी के स्थान पर सूखी-सडी माया थी और वह विह्वल हो उठी थी।

इसी तरह लेटे-लेटे करवट बदलते दिन ढल गया, कमरे में जैसे उसका दम घुटने लगा। वह उठी, आँगन में आई। मुँडेर पर एक कौवा काँव-काँव कर रहा था और ताक के ऊपर आगे की बढी हुई महराब पर एक कबूतर पख फुलाये, गर्दन झुकाये अपनी प्रेयसी को मनाने की कोशिश कर रहा था। किन्तु जब वह मस्तानी चाल से चलता उसके पास जाता, तो वह उड जाती। एक ताक से दूसरे पर, दूसरे से

तीसरे पर, तीसरे से खटोले पर, खटोले से चारपाई के पास और फिर वहाँ से लकडी के जगले पर कबूतरी जा-जा कर बैठी, पर उसने पीछा न छोड़ा, तब झपकी मार कर जो वह उड़ी, तो अनन्त नीले आकाश मे विलीन हो गई। कुछ क्षण कबूतर ने वहीं जगले पर एक दो चक्कर लगाए, 'गटर गूँ, गटर गूँ' की और फिर वह भी ऊपर आकाश की ओर उड़ गया।

लम्बी साँस भर कर सेंकरी ने अँगड़ाई ली, फिर उसने घडे के ठढे पानी से हाथ मुँह धोया और फिर जैसे किसी अज्ञात प्रेरणा से ऊपर छत पर खुले में चली गई।

सामने मुहल्ले के परले सिरे पर, अपने पुराने मकान की छत पर परमेशरी ब्राह्मणी का लड़का, मौन, पुस्तक मे ध्यान लगाये पढ़ रहा था। सेंकरी ने अनायास ही अपने बिखरे बालों पर हाथ फेरा। उसके मन मे उमग उठी, कुछ गाये, कुछ गुनगुनाये कोई ढोलक का पुराना गीत, पर वह चुप अनिमेष-दृगों से ऊपर देखती रही। मुहल्ले का नीम ठडी हवा के स्पर्श से जैसे मस्त होकर झूम रहा था। आकाश की गहराइयो मे चीलें एक दूसरी के पीछे उन्मत्त भाग रही थीं। सेंकरी ने अँगड़ाई-सी ली। तभी युवक ने उसकी ओर देखा। उसके सिर से साड़ी का छोर उड़ गया था और उसके बिल्लौर ऐसे गले में कठी के बडे-बडे सुनहरे मनके डूबते हुये अशुमाली की किरणों से जैसे शत-शत सूर्य बन कर चमक रहे थे।

सेंकरी का मुख कानों तक सुर्ख हो गया। और युवक ने एक बिजली-सी अपने समस्त शरीर मे दौड़ती हुई महसूस की।

तभी नीचे सीढ़ियों में पडितजी के चप्पलों की फट-फट सुनाई दी। वह जल्दी से नीचे चली गई और मुस्कराते हुए उसने पडितजी का स्वागत किया। यजमानों के घर से जो कुछ वे ले आये थे, उसके सम्बन्ध मे एक दो मजाक भी किये, पर जाने पडितजी को उसके चेहरे पर क्या लिखा हुआ नजर आया, कि सब कुछ जल्द-जल्द उसके हवाले करके वे पहले किसी बहाने से छत पर गये और उन्होंने घूर कर दूर सामने की छत पर पढते हुये युवक को देखा। तभी उसने भी सिर उठाया, दोनों की आँखे चार हुईं। पडितजी ने अपनी चोटी पर हाथ फेरते हुये एक हुकार भरी और जैसे एक क्षण मात्र के लिये हैरान-सा होकर युवक ने आँखे फिर पुस्तक मे लगा लीं।

दूसरे दिन सेकरी अभी बिस्तर से उठी भी नहीं थी कि उसने देखा—सामने के मकान की ओर पूरा साढ़े पाँच फीट-ऊँचा ईंटों का पर्दा बनाने का आयोजन राज मजदूर कर रहे हैं।

यह थी उस राज की वास्तविकता ! सेकरी को पता चल गया कि इस राज के राजा और बन्दीखाने के जेलर मे कोई अन्तर नहीं और अपने पति की ओर से उसके मन में जो भय-सा था, वह एक तीव्र घृणा में परिवर्तित हो गया और दिन-दिन इस घृणा की तह और भी गहरी होती गई और यह सब उस समय तक जारी रहा, जब तक इस घृणा और भय के होते हुए भी वह एक लड़की की माँ न हो गई और पुत्र की आकांक्षा मन में लिये हुये ही, अपने विवाह के पूरे पाँच वर्ष बाद नवजात कन्या के प्रथम जन्म दिवस को ज्योतिषीजी परलोक न सिधार गये।

× × ×

तब अपने इस जल्लाद-ऐसे पति की मृत्यु पर अपनी भावनाओं का भलीभाँति विश्लेषण सेकरी न कर सकी थी। उसका मन हलका भी था और एक बड़े बोझ के नीचे दबा हुआ भी प्रतीत होता था। जोर-ज़ोर से हँस पडने को भी उसका जी चाहता था और ऊँचे-ऊँचे रो उठने को भी मन होता या। पर अधिक वह रोई ही थी। अपना एक-एक गहना उतार कर उसने ट्रक में रक्खा, और फिर प्रथा के अनुसार पडोसिनों और दूर नजदीक के रिश्तेदारों के साथ मिल कर उसने छाती भी पीटी, बाल भी नोचे और आँखें भी सुजा ली।

माँ ने तब आकर उसे सान्त्वना दी थी कि बेटी, विधाता का लेख तो अमिट है, उसकी आज्ञा के बिना एक तिनका तक नहीं हिल सकता। जिस हाल मे वह रक्खे, उसी में रहना चाहिये और फिर माँ ने गाँव की कई लडकियों की मिसाले देकर समझाया था कि गाँव मे बारह-बारह वर्ष की उम्र में विधवा हो जाने वाली स्त्रियाँ बैठी है और अपने पति के नाम का अवलम्ब लेकर उन देवियों ने अपना सारे का सारा जीवन काट दिया है। यह तो फिर परमात्मा को शत-शत धन्यवाद है कि ज्योतिषीजी दोनों दूकानें और मकान उसके नाम छोड गये है, नहीं तो उसे यही डर था, कि कहीं सौत और उसके रिश्तेदार ही सिर पर न सवार हो जायँ। इस तरह परमात्मा को धन्यवाद देकर माँ ने सेकरी को सलाह दी थी कि बेटी, अपने छोटे भाई को यहाँ बुलवा

लेना। वह यहाँ शहर मे रह कर पढ जायगा। तीस रुपया तो दुकानों का किराया ही आ जाता है। यह इतना बड़ा मकान भी क्या करना है, आधा किराये पर चढा देना, और मन को धर्म-कर्म के कामो में लगाना। और फिर उसने यह भी कहा था कि गहने सब जाते-जाते वह स्वय ले जायगी। यहाँ सौ चोर-चकार का डर रहता है। जब लड़की सयानी हो जायगी तो आ जायेंगे, और फिर जैसे हवा में देखते हुये माँ ने कहा था—"रामू का विवाह भी करना है, और घर की हालत तो तुम से छिपी नहीं।"

और सेंकरी ने जैसे बिना कुछ सुने ही यह सब स्वीकार कर लिया था।

× × ×

रात में जब अपने मकान की खुली छत पर सेंकरी सोई, तो उसे नींद नही आई। साथ लगी बच्ची मुँह मे स्तन लिये ही सो गई थी। सेंकरी ने उसे अलग किया और करवट बदली। ऊपर आकाश में पूर्णिमा का चाँद अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना के साथ चमक रहा था। ठढी-ठढी हवा चल रही थी। सेंकरी के हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया। इन एक-दो वर्षों में जीवन को वह कितना समझने लगी थी! दायीं ओर एक ढीली-सी चारपाई पर गठरी-सी बनी सोई हुई माँ पर उसकी दृष्टि गई और ग्लानि से उसका गला भर आया—यह विधाता की लेखनी है अथवा माँ-बाप का लेख? माता-पिता का प्रेम एक व्यर्थ की बात है। परिस्थितियों की झझा का एक झोंका भी तो वह सह नहीं सकते, नही तो प्रतिदिन इतने माँ-बाप अपनी लडकियों को इस प्रकार भट्टी मे न झोंक देते। सेंकरी को तब एक और बात याद हो आई, जो एक दिन ज्योतिषीजी ने अपनी कुलीनता का बखान करते हुये सुनाई थी, उन्होंने कहा था—पिछले जमाने में कुलीन घरानों मे तो लड़की के पैदा होते ही उसका गला घोंट देते थे। वृद्धा दादियाँ और जहाँ वे न होतीं, वहाँ माताएँ लडकी पैदा होते ही उसका गला घोट देती थीं, और जहाँ माताएँ इस योग्य न होतीं, वहाँ दाइयाँ ही यह काम बड़ी सुगमता से पूरा कर के नवजात बालिका को पोटली मे बाँध कर धरती में गाड़ आती थीं। नारी ही नारी पर कितने अत्याचार करती है! वहाँ पड़े-पडे जैसे उसका दम घुटने लगा। एक सर्व-ग्रासिणी ज्वाला, जैसे उसके अन्तर में धू-धू

करके जल उठी। उसकी माँ ने क्यों न जनमते ही उसका गला घोट दिया ? और आँखों के भीजे हुये कोरों को आँचल से पोंछ कर उसने करवट बदली। मुहल्ले के नीम पर बैठा हुआ बिरड़ी (छोटे उल्लुओं) का जोड़ा अपनी कर्कश आवाज़ में बिरड़-बिरड़ कर उठा, और ऊपर गगन में एक बड़ा-सा चमगादड अपने परों की छाया दीवार पर डालते हुए निकल गया।

सेंकरी के सामने उसके सब गहने एक-एक करके आये—चौप, फूल, किलिप, काँटे, कठी, माला, रानीहार, बन्द, गोखरू, लच्छे, अनन्त ..एक-एक करके उसके सामने से गुजर गये ! तो क्या वह इनमे से एक को भी अग न लगा सकेगी ? क्या इन्हे अब उसकी भावजे पहिनेंगी ? अपने इन प्रिय आभूषणो के लिये क्या वह एकदम अपरिचित हो जायगी ? और जैसे एक असह्य ईर्ष्या से उसका तन-मन जल उठा और एक बार अपने उन प्रिय आभूषणों को जी भर कर देख लेने की इच्छा उसके मन मे प्रबल हो उठी। उसने इस इच्छा को दबाने का प्रयत्न भी किया। अपने वैधव्य का भी उसे ख्याल आया, विधवाओ के धर्म और समाज के प्रतिबधों की बात भी उसने सोची, पर उसकी वह इच्छा क्षण-प्रति-क्षण बलवती ही होती गई। आखिर वह धीरे से उठी। उसने माँ की ओर दबी आँखो से देखा, दिन भर छाती पीट-पीट कर थकी हुई वह खर्राटे ले रही थी। सेंकरी पजों के बल चलती हुई अपने कमरे मे पहुँची, अपने सब बहुमूल्य कपडे उसने निकाल लिये। तभी नीचे से वह लाल साडी निकाली, जिसे उसने विवाह के दिन पहिनी थी, और एक प्रेरणा से उसने अपने कपडे उतार कर उसे पहिनना शुरू किया। साडी पहिन कर उसने अपने गहने निकाले। एक-एक करके उनको पहिना। हाथों मे गोखरू डालते समय उसे मालूम हुआ, वह कितनी कमजोर हो गई है और उसकी आँखों के सामने रक्त के इकट्ठा हो जाने से कलाई बनी हुई लाल-लाल

चूड़ी फिर गई। वह शीशे के सामने गई। उसके गोल-गोल गालों पर गढ़े पड़ चले थे, जबड़ों की हड्डियाँ दिखाई देने लगी थी, और अभी उसकी उम्र सिर्फ अठारह वर्ष की थी।

दीर्घ निःश्वास लेकर वह वहीं ट्रंक पर बैठ गई और उसकी आँखों के सामने चार वर्ष पहले की एक घटना फिर गई, जब परमेशरी ब्राह्मणी के हँसमुख लड़के ने उसकी कठी का हुक बाँध दिया था। उसी दिन की तरह एक अज्ञात आनन्द की झुरझुरी-सी उसके शरीर मे दौड़ गई।

दूर कहीं मुसलमानों के मुहल्ले मे मुर्ग ने अजान दी। चौंक कर सेकरी उठी। सब गहने उतार कर उसने ट्रंक मे बन्द किये, कपड़े तह लगा रक्खे और दबे पाँव ऊपर पहुँची। चाँद तब दायीं ओर के ऊँचे मकान की ओट में चला गया था और चारपाइयों पर हलका-सा अँधेरा छा गया था। चुपचाप सेकरी अपनी चारपाई पर जा लेटी।

×　　×　　×

दूसरे दिन जब माँ जाने लगी और अन्दर ले जाकर उसने सेकरी से गहने माँगे, तो उसने टाल दिया।

माँ

लेखिका : श्रीमती रुकय्या रीहाना

मास्टर हमीद अब दिल्ली नगर मे बारह टोटी पर एक मदरसे मे पढाते थे। उनका घर मऊ-रशीदाबाद के 'पहाडी' मुहल्ले में था। उनके बाप बढई का काम करते थे। हमीद की शिक्षा पहले तो मुहल्ले की मसजिद में हुई। थोडे दिन उन्होंने मुल्ला साहब के मक़तब मे पढा, फिर बाप ने तहसीली मदरसे में दाखिल करा दिया। हमीद उर्दू मिडिल इम्तहान देने वाले थे कि बस्ती में ताऊन की ऐसी बीमारी फैली कि घर-घर रोना-चिल्लाना मच गया। इस बीमारी में हमीद के बाप का भी स्वर्गवास हो गया। हमीद की माँ के पास कफन-दफन के बाद कुल सत्ताईस रुपये बचे। हमीद मिडिल की परीक्षा मे पास हो गये। अब उन्हें अंग्रेजी पढने का शौक़ हुआ। हमीद ने मिडिल की परीक्षा के लिये सारी दुनिया का भूगोल याद कर डाला था, मगर अजीब बात है कि जब उन्होंने सोचा कि किस शहर में जाकर अंग्रेजी पढ़ें, तो बस एक दिल्ली का विचार मन में आया। शायद इसलिये कि बचपन मे कहानियों मे दिल्ली नगर की चर्चा सुनी थी, या इसलिये कि उस मुहल्ले के एक आदमी दिल्ली में पुलिस में नौकर थे, और हर दो वर्ष बाद घर जाया करते थे। हमीद ने उनसे एक बार पूछा था कि दिल्ली कैसा शहर है, तो उन्होंने कुछ मुस्करा कर लाल-बुझक्कड की तरह कहा था, "मियाँ लड़के! तुम इन चीजों को क्या समझो। दिल्ली बडा गठा हुआ शहर है।"

ख़ैर, तो हमीद के निकट दिल्ली ही एक शहर था, जहाँ जाकर वे अंग्रेजी मदरसे में पढ सकते थे। माँ से पन्द्रह रुपये लिये और दिल्ली पहुँचे। उस 'गठे हुये' शहर मे घटों घूमने के बाद वह गली कासिमजान में अपने पडोसी नसरुल्ला खाँ कास्टेबिल के घर पहुँचे। नसरुल्ला खाँ ने, जो हमीद के बाप को अच्छी तरह जानते थे, हमीद को बडी खातिर की और अपने छोटे से मकान के दरवाजे मे उनके लिये एक खटोला डाल दिया। हमीद अब वहीं रहने लगे। एक स्कूल

में नाम भी लिख गया और तीन साल मे ये दसवे दरजे तक पहुँच गये। इन्हीं दिनों हमीद ने अपनी कक्षा के एक लड़के को, जो हिसाब में कमजोर था, हिसाब पढाना शुरू कर दिया। उस लड़के का बाप हमीद को सात रुपया मासिक दिया करता था। हमीद ने नसरुल्ला खाँ से कहा—"अब मेरे पास दाम हैं, आप आज्ञा दे तो मैं भठियारे के यहाँ रोटी खा लिया करूं।"

नसरुल्ला खाँ ने कुछ इस तरह कहा—"साहबजादे कुछ बेवकूफ हुये हो?" कि हमीद को फिर कभी कुछ कहने का साहस न हुआ।

दस महीने में हमीद ने सत्तर रुपये तो दिल्ली में कमाये और जो पन्द्रह माँ से लेकर चले थे, उसमें से भी दस बाकी थे। एक बार माँ ने दो रुपये का और मनीआर्डर भेजा था, कुल बयासी रुपये हुये। मदरसे मे गर्मियों की छुट्टी थी। नसरुल्ला खाँ ने भी छुट्टी ली और देश जाने का इरादा किया, तो हमीद को साथ लेते गये।

उस समय हमीद की माँ के पास बस अपने पति के समय के बारह रुपये थे और आँगन वाला कटहल का पेड़, जो हर साल पचीस-तीस रुपये में बिक जाता था, मगर जब हमीद घर पहुँचे, तो माँ ने एक रिश्तेदार के यहाँ उनके विवाह का सारा प्रबन्ध कर रक्खा था। विवाह जैसे-तैसे हो गया और विवाह के सातवें दिन हमीद देहली वापस चले आये। यहाँ आकर परीक्षा की तैयारी मे लग गये। मार्च मे परीक्षा हुई और यह दूसरी श्रेणी में पास हो गये। अब नौकरी की चिन्ता हुई। बहुत दिन इधर-उधर मारे मारे फिरने के बाद एक मदरसे में एवजी पर काम करने का अवसर मिला। हमीद बहुत मेहनती थे। हैड मास्टर उनके काम से बहुत खुश हुआ और उसने एक स्थायी जगह दिलवा दी।

हमीद को अब बीस रुपये मासिक मिलते थे। उन्होंने फिर साहस करके नसरुल्ला खाँ से कहा—"चचा, अगर इजाजत दें, तो मैं अलग कोई कोठरी ले लूँ।"

नसरुल्ला खाँ ने कहा—"अच्छा मियाँ, तुम्हारी यही राय है तो ले लो।" फिर कुछ देर के बाद बोले—"मैं खुद तुम्हे सस्ता-सा मकान ढूँढ दूँगा, जिसमे जनाना भी हो।"

हमीद स्वय सोच रहे थे कि अब अपनी पत्नी को मऊ से जाकर ले आये। नसरुल्ला खाँ की भी राय मालूम हुई, तो तीन रुपये मासिक का

एक छोटा-सा बे-आँगन का घर मिलते ही वे तीन दिन की छुट्टी लेकर घर गये और अपनी पत्नी को साथ ले आये। बेचारी माँ फिर अकेली रह गई।

× × ×

पत्नी को देहली लाये सात वर्ष हो गये। इस बीच हमीद के यहाँ तीन लड़के हुये और एक लड़की जिनमें से दो लड़के मर गये। पत्नी भी बहुत बीमार रही। एक बार स्वयं उन्हे भी लू लग गई, तो कोई तेरह-चौदह दिन चारपाई पर पड़े रहे। उधर मदरसे मे काम भी दिन ब दिन बढ़ता गया। अब उनकी तनख्वाह तीस रुपये थी। और दस रुपया मासिक पर एक लड़के को उसके घर पर ही पढ़ाया करते थे। मगर दिल्ली का खर्च और बाल-बच्चों का साथ! बेचारे हमीद के पास बचता-बचाता कुछ नहीं था, इसलिये माँ के खत पर खत आते थे, स्वय उसका जी भी बहुत चाहता, मगर घर जाने की नौबत न आती।

मास्टर हमीद का नियम था कि सुबह मुहल्ले की मसजिद में नमाज पढ़ी और अपने दरवाजे में एक चारपाई पर बैठ कर आधा पैरा क़ुरान मजीद का पढ़ा, फिर और कोई काम किया। प्रायः नित्य जब वे नमाज पढ़ कर लौटते तो एक सत्तर वर्ष की बूढ़ी, सफेद बालों और झुकी कमर वाली धोबन 'जनकिया' रास्ते में अपनी लादी लिये घाट को जाती मिलती थी। न जाने क्या बात हुई कि सात-आठ दिन से जनकिया न मिली। कोई ऐसी बात न थी। मगर आठवे दिन जब मास्टर हमीद सुबह-सुबह मदरसे जाने के लिये निकले, तो कोने वाले घर के पास से गुजरते हुये न रहा गया और उन्होंने ड्योढी मे क़दम रख कर एक लड़के से, जो सामने था, पूछा—"अमाँ लड़के, जनकिया धोबन का क्या हाल है?"

लड़के ने कहा—"जनकिया तो कल रात को एक बजे मर गई। उसकी बिरादरी वाले कल जमुना पर उसे फूँक भी आये।"

मास्टर हमीद का बेचारी जनकिया से क्या वास्ता? मगर यह समाचार सुन कर उनका कलेजा धक से हो गया। रास्ते भर सिर झुकाये न जाने क्या सोचते रहे। मदरसे पहुँचे तो उदास! साथियों ने पूछा भी "कहिये! मिजाज कैसा है?" मगर उन्होंने यह कह कर कि "कोई बात नहीं है" टाल दिया। घर आये तो भी सुस्त-सुस्त। पत्नी ने पूछा तो उसे भी कुछ न बताया। मगर तीसरे दिन बकरीद की छुट्टी

होने वाली थी । हमीद ने दो दिन की छुट्टी की अर्जी दी, और ठीक़ बकरीद के दिन मऊ रशीदाबाद का टिकट ले, रेल मे सवार हो गये। ईद का दिन रेल में कटा । न नमाज, न कुर्बानी । मगर दिन भर उस सफेद सिर का ध्यान लगा रहा, जिसने बरसों सोते समय उनके बिस्तर पर झुक कर दुआएँ दी थीं, उस गोद का, जिस मे बरसों उन्होंने आराम किया था, उस चेहरे का, जिसे देख कर उनकी सारी चिन्ताएँ दूर हो जाती थीं और जिसे अब कोई सात वर्ष से नहीं देखा था ।

कोई यह भी न समझे कि हमीद के हृदय मे मातृ-प्रेम नहीं था, या जोरू-बच्चों मे पड़ कर वे अपनी माँ को भूल गये थे। वे साल मे तीन-चार बार अपनी माँ को चार-चार पाँच-पाँच रुपये का मनीआर्डर भेज देते थे और यह रकम एक गरीब बाल-बच्चों वाले मास्टर के लिये बहुत थी। घर माँ को पत्र लिखते थे, तो बच्चों के हाथ मे क़लम देकर खत पर कुछ न कुछ निशान दादी के लिये करा देते थे । उनकी पत्नी ने भी कुछ लिखना-पढना सीख लिया था। वह भी बराबर अपने हाथ से पत्र में सलाम लिखती थीं। माँ का पत्र भी प्रायः हर महीने आ जाता था। उसमें बस्ती की, इधर-उधर की खबरें होतीं और सदा यह सवाल होता, कि बेटा घर कब आयगा? माँ यह पत्र एक दर्जिन से लिखवाया करती थी। उसकी लिखाई ऐसे कीडे-मकोड़ों की-सी होती कि पत्र का बहुत-सा अंश मुश्किल से पढा जाता, मगर यह सवाल सदा बहुत साफ-साफ कार्ड पर लिखा होता था। इसका जवाब हर बार हमीद भी यही लिखते थे कि 'खुदा ने चाहा तो अगले आमों की फसल मे'। मगर हर साल आमों की फसल चली जाती और माँ को बेटे की सूरत देखना नसीब न होती थी। हमीद चाहते थे कि सारे कुनबे को साथ लेकर जायँ। फिर वे इतने दिन से नौकर भी थे। माँ के लिये और दूसरे सगे-सबन्धियों और पडोसियों के लिये दिल्ली के सौगात भी ले जाना जरूरी था। पर इस सब के लिये उनके पास कभी दाम जमा न हो पाये। सात वर्ष इरादे ही इरादे मे कट गये, मगर जनकिया की मृत्यु की खबर ने न जाने हमीद के दिल पर क्या असर किया कि वे अकेले ही चल खड़े हुए।

हाँ, तो बकरीद के दिन सूर्यास्त से कोई घंटा भर पहले मास्टर हमीद मऊ रशीदाबाद पहुँचे। खूब जोर का पानी बरस रहा था। मास्टर साहब के पास बस एक छतरी थी, और कुछ सामान नहीं। छतरी

लगा, यों ही पैदल सीधे घर गये। मऊ रशीदाबाद मे लोग बरसात के पानी की निकासी को कोई जरूरी चीज नही समझते, इसलिये वर्षा मे अक्सर रास्ते भी पानी से भर जाते थे। मास्टर हमीद एक जगह फिसल कर गिरे भी। कई जगह प्राय. घुटनों-घुटनों पानी मे चलना पड़ा। खैर, जैसे-तैसे वे अपने घर पहुँचे। घर का द्वार बन्द था। उन्होंने जजीर खटखटाई, कोई न बोला। फिर जोर से खटखटाई, किसी ने जवाब न दिया। छतरी नीचे रख कर दोनों हाथों से दरवाजा खूब ठोंका, और दो एक बार जोर से 'अम्माँ, अम्माँ' भी मास्टर हमीद के मुँह से निकल गया, तो एक कोठरी के अन्दर से किसी ने बैठे हुये स्वर मे जवाब दिया—"यह कौन है अम्माँ वाला, यहाँ किसी की अम्माँ नहीं रहती।"

मास्टर साहब बोले—"अरे भाई, हमीद की माँ का घर यही तो है न?"

एक मोटा-सा आदमी बस एक धोती बाँधे, आँखें मलता, और एक हाथ मे छतरी से अपने को पानी से बचाता हुआ दरवाजे पर आया। यह एवज कसाई का बेटा लच्छू था, जो बकरीद के दिन की कलेजी और दिल गुर्दों के कबाब खाकर पचाने के लिये सो रहा था। उसने कोई चार वर्ष हुये हमीद की माँ से यह मकान मोल ले लिया था। उसने बस एक दो जुमलों मे यह सब कथा हमीद से कह सुनाई और बताया कि तुम्हारी माँ अब उस नवासी दर्जिन के घर मे, जो कोने में है, रहती है।

लच्छू ने यह कह कर दरवाजा बन्द कर लिया और जाकर फिर अपनी चारपाई पर पड रहा। मास्टर हमीद के फिर एक दो मिनट तो कदम ही नहीं उठे। ऐसा मालूम हुआ कि किसी ने दिल मे तीर मारा और काम तमाम कर दिया। मकान बिक गया और मुझे खबर तक न हुई। या अल्लाह! क्या माँ पर इतनी तगी थी? मैं तो समझा था कि कुछ अब्बा ने छोड़ा था, कुछ मैं भेज देता था, कुछ आमदनी कटहल के पेड से हो जाती होगी, और काम चलता होगा। मगर यह तो अपनी झोपड़ी भी पराये हाथों बिक गई। यही सोचते-सोचते जब सिर उठाया तो नवासी दर्जिन के मकान के सामने पहुँच गये थे। जजीर हिलाने के लिये हाथ उठाया, तो ऐसा मालूम हुआ कि हाथ भारी पड गया है। खैर, जजीर खटखटाई। नवासी, जो वहीं पास बैठी कुछ सी रही

थी, दरवाजे पर आई और हमीद को पहिचान गई। उसने न कुछ कहा, न सुना, चिल्लाती हुई सीधी अन्दर गई—"हमीद की माँ, हमीद की माँ, हमीद आ गया।"

हमीद की माँ से कोई साल भर से उठा-बैठा भी मुश्किल से जाता था, मगर यह खबर सुन कर न जाने कहाँ की शक्ति आ गई कि झट चारपाई से कूद कर दरवाजे पर दौड़ी, हमीद को लिपटा लिया और फूट-फूट कर रोने लगी। हमीद की माँ के शरीर में बस हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गई थीं, और न जाने आदमी बूढ़ा होते-होते घिस जाता है या क्या कि वह बिल्कुल बच्चो की तरह होकर रह गई थी। हाँ, सिर के बाल सफेद थे, जैसे बरफ। गर्दन पर सिर का बोझ उठाना भी कठिन था, और सफेद सिर बराबर हिला जाता था। न जाने कमजोरी से या अत्यधिक प्रेम के कारण सारा शरीर काँप रहा था। कई मिनट तक यह हाल रहा कि न माँ ने कुछ कहा, न बेटे ने। आखिर इस मौन को माँ ही ने भग किया और कहा—"बेटा, कालेे-कोसों से आया है, पानी में तर, जरा बैठ जा तो चाय बना लाऊँ।"

हमीद के मुँह से इसके जवाब में यह निकला—"अम्माँ, तुमने घर बेच डाला, खबर तो की होती।"

माँ ने कहा—"बेटा, खबर करने से क्या फायदा होता? तुझे और फिक्र क्या कम है? और यह बेचारी नवासी, अल्लाह भला करे, बहुत ख्याल करती है। मुझे किसी तरह की तकलीफ नहीं। बेटा, तू आ गया, मेरी तो जिन्दगी हो गई!"

हमीद ने अब जरा नजर उठा कर मकान को देखा तो सामने एक छोटी-सी कोठरी थी, उसमें नवासी के दो बच्चे, एक झलगी चारपाई पर पड़े सो रहे थे। एक अलग कोने में खेल रहा था और एक चिल्ला चिल्ला कर रो रहा था।

नवासी उसे चुप करके चूल्हे में आग सुलगाने लगी, तो हमीद ने देखा कि बेचारी का कुरता पीठ पर बिलकुल फटा हुआ है। कपड़े धुले हुये साफ जरूर थे, क्यों न होते? ईद का दिन था। हमीद ने माँ से पूछा—"अम्माँ! क्या तुम भी यहीं सोती हो?"

माँ ने कहा—"नहीं बेटा, मैं उधर की दूसरी कोठरी में रहती हूँ। यहाँ तो नवासी सोती है, जो तुम्हें खत लिखा करती है।"

"अम्माँ ! क्या अब भी तुम कुछ काम करती हो ? अब तो तुम्हारे हाथ थक जाते होंगे।"

"नहीं बेटा," माँ ने कहा, "हाथ तो अभी तक काम देते हैं, मगर कोई डेढ साल से आँखें बेकार हैं, निगाह नहीं जमती।"

हमीद चिल्लाये—"आँखे ? अम्माँ ! तो क्या तुम मुझे भी नहीं देख सकतीं ?"

माँ ने हमीद के सिर पर हाथ फेरा, फिर गालों पर, उसने सिर को छाती से लगाया, मुँह पर कुछ मुस्कराहट-सी आई और कहा, "बेटा ! तुझे तो देख सकती हूँ। अल्लाह का शुक्र है। सूरज निकलता है, उसे भी देख सकती हूँ। घर भी देख लेती हूँ, मगर और कुछ दिखाई नहीं देता। हाँ बेटा, तेरा सब से छोटा नन्हा अब कितने दिनों का हुआ ?"

"अम्माँ, तुम्हारी दुआ से डेढ़ साल का है।"

"अच्छा, तो वह कुर्ता-टोपी उसके बिलकुल ठीक होगी।" यह कह कर माँ ने एक मैली-सी गठरी खोली और उसमें से टटोल कर एक लचका लगा हुआ रेशमी कुरता निकाला और एक लाल, सुन्दर गोल टोपी, जिस पर सच्ची किनारी टँकी हुई थी।

"अम्माँ, क्या यह तुमने नन्हे मजीद के लिये सिया है ?" हमीद ने पूछा और आँखे, जो सजल हो गई थी उन्हे हाथ से पोंछा।

"नहीं बेटा," माँ ने कहा, "यह सिये तो थे मैंने तेरी सलमा के लिये, मगर तुम आये ही नहीं और वह बेचारी चल बसी।" सारी बात-चीत में शिकायत का बस यही एक शब्द था और बस। हमीद माँ की चारपाई पर बैठ गये और न जाने किन विचारों में खो गये। इसी तरह शायद कोई दो घंटे बीत गये। इस बीच पडोस के कुम्हार की पत्नी नसीबन भी घर में आ गई थी और यह तीनों स्त्रियाँ न जाने क्या करती फिरती थीं। कोई आठ बजे हमीद की माँ ने आकर उनके कंधे पर हाथ रक्खा और कहा, "बेटा ! आज तो तू मेरे साथ रोटी खायगा ?"

हमीद, जो सो गये थे, चौंक पडे और कहा "माँ, और नहीं तो क्या !"

उसका विचार था कि माँ जब इस गरीबी की हालत मे दिन काट रही है तो जौ-जुआर की रोटी और कुछ दाल-दलिया होगा। मगर वहाँ तो ऐसे ठाठ का दस्तरख्वान चुना हुआ था कि हमीद चकित रह गये।

कबाब थे, कलेजी थी, पराठे थे, अंडो के चिल्ले थे, उडद की दाल थी, मऊ का तेज सिरका था, आम की चटनी थी, एक प्याले मे दूध था, एक तश्तरी में मलाई और एक प्लेट मे कटे हुये कलमी आम। हमीद आश्चर्य मे थे कि इस गरीबी मे यह सब सामान कहाँ से आया? कुछ समझे कि दौड़-धूप तो नसीबन और नवासी ने की है, मगर दाम आखिर कहाँ से आये? यह सोचते जाते थे और मुँह मे कौर रखते जाते थे, मगर मुँह मे पहुँच कर ऐसा लगता था कि कौर कुछ बढ गया है और मुँह चलाने मे कठिनाई होती है। खाना समाप्त हुआ तो हमीद के मुँह से एकदम वह दुआ निकली, जो बचपन मे माँ ने उसे सिखाई थी और जो उन्होने अब बरसों से खाने के बाद नहीं पढी थी।

भोजन करके हमीद फिर माँ की चारपाई पर बैठ गये। नसीबन और नवासी बाहर चली गईं, और हमीद की माँ ने निकट आकर और सिर पर हाथ रख कर कहा, "बेटा! बुरा न मानो तो एक बात कहूँ?"

हमीद का मुँह पीला पड़ गया। हृदय सिकुड़ने-सा लगा। उसे विचार हुआ कि शायद माँ यह कहेगी कि मुझे इस पराये घर से निकाल कर अपने साथ ले चल या कोई दूसरा घर ले दे। यही विचार मन मे उठ रहे थे। मगर हमीद ने कहा, "अम्माँ जरूर कहो।"

माँ ने कहा—"बेटा! तू शहर का रहने वाला है, मदरसे मे नौकर है, मैं पराये घर पडी हूँ। तेरी क्या खातिर करूँ? नसीबन को भेज कर खाँ साहब की कोठी में तेरे लिये एक कमरा साफ कराया है और खाट डलवा दी है। मगर जी यही चाहता है कि तू मेरे साथ रहता। कहते हुये डरती हूँ, क्या तू मेरा यह अरमान पूरा कर सकता है? मैंने इसी आस पर नसीबन के यहाँ से यह चारपाई भी मँगा ली है।" सामने छप्पर मे एक चारपाई खडी थी, जिसकी अदवान सम्भवतः उसी समय कसी गई थी।

माँ की यह बात सुन कर हमीद का जी भर आया, मुँह से आवाज न निकली, घबराहट मे इधर-उधर देखा और बोले, "अम्माँ! यह भी कोई बात है? मैं तुम्हारे पास न रहूँगा, तो कहाँ जाऊँगा?"

माँ ने हमीद का माथा चूम लिया और झट नसीबन से वह चारपाई अपनी कोठरी में डलवा दी। फिर एक गठरी खोली, उसमें से एक सफेद चादर निकाली, जिस पर बड़ी सुन्दर बेल लगी थी। दो तकिये

निकाले, साफ-साफ गिलाफ चढाये, जिनके चारों ओर झालर लगी थी। ओढने के लिये एक बारीक चादर। तकियों पर कोई अच्छा-सा इतर मला। एक नया उगालदान पट्टी के नीचे रक्खा। दिल्ली की फूलवाली काली जूतियों का एक नया जोड़ा चारपाई के पास रक्खा और बेटे की तरफ बढी और कहा—"बेटा! अब तुम सो रहो, बहुत थक गये होगे।"

हमीद यह सब तमाशा देख रहे थे और आश्चर्य मे थे कि या अल्लाह! यह सब कहाँ से आया। आखिर न रहा गया और पूछ ही लिया—"अम्माँ, यह खाना और सारा सामान कहाँ से आया?"

माँ बोली—"बेटा! अब मऊ भी लश्कर ही है। अल्लाह रखे सब चीज मिलती है और खाना, सो आज तो बकरीद का दिन था, गोश्त पड़ोसियो के घर से आया था और चीजें भी इधर-उधर से कर ली।"

"मगर अम्माँ! यह चादर, यह गिलाफ, यह जूतियाँ, यह सारा सामान—इत्र, मुरादाबादी उगालदान, इसके लिये रुपया कहाँ से आया?"

माँ की अधी आँखों से दो-चार पानी की बूँदें टपकीं और उसने ऐसे स्वर में, जिसमें न जाने उलाहने का अधिक अश था, या प्रेम का, कहा "बेटा! तू और यह पूछता है! एक-एक दिन तेरे ही इन्तजार में कटा है। सात वर्ष मे यह तैयारी कर पाई हूँ। बेटा, सात वर्ष मे!"

माँ की इस बात को सुन कर शान्ति के देवता ने उस छोटी-सी कोठरी में अपने पर फैला दिये, फिर रात भर किसी ने किसी से कुछ बात न की।

नारा

लेखक : जनाब सआदत हसन 'मिन्टू'

उसने ऐसा अनुभव किया कि उस भारी इमतारत की सातों मजिलें उसके कन्धों पर रख दी गई है।

वह सातवी मजिल से एक-एक सीढी करके नीचे उतरा और इन तमाम मजिलो का बोझ उसके चौडे, मगर दुबले कन्धो पर सवार होता गया। जब वह मकान-मालिक से मिलने के लिये ऊपर चढ रहा था तो उसे ऐसा लग रहा था कि उसका कुछ बोझ हलका हो गया है और कुछ हलका हो जायगा। इसलिये कि उसने अपने मन मे सोचा था कि मकान का मालिक, जिसे सब सेठ के नाम से पुकारते हैं, उसका दुःख जरूर सुनेगा और किराया चुकाने के लिये उसे एक महीने की मोहलत और देगा। यह सोचते हुए उसके स्वाभिमान को ठेस लगी थी, लेकिन फोरन ही उसकी वास्तविकता भी उस पर प्रकट हो गई थी। वह भीख मॉगने ही तो जा रहा था, और भीख हाथ फैला कर, आँखों मे आँसू भर कर, अपने दुख-दर्द को सुना कर और अपने घाव दिखला कर ही मॉगी जाती है।

उसने यही किया। जब वह विशाल भवन के बडे दरवाजे से दाखिल होने लगा, तो उसने अपने स्वाभिमान की उस चीज को जो भीख मॉगने में बाधक होती है, निकाल कर सड़क पर डाल दिया था।

वह अपना दिया बुझा कर और अपने आपको अँधेरे में लपेट कर मकान-मालिक के उस चमकते हुये कमरे में दाखिल हुआ, जहाँ वह अपने दो मकानों का किराया वसूल किया करता था, और हाथ जोड़ कर एक तरफ खड़ा हो गया। सेठ के तिलक लगे माथे पर कई सिलवटें पड़ गई। उसका बालों भरा हाथ एक मोटे से खाते की तरफ बढा। दो बडी-बड़ी आँखों ने इस कापी पर कुछ अक्षर पढ़े और एक भद्दी-सी आवाज गूँजी—

"केशवलाल—खोली पाँचवीं, दूसरा माला—दो महीने का किराया—ले आये हो क्या ?"

यह सुन कर उसने अपना दिल, जिसके सारे पुराने और नये घाव वह सीढ़ियाँ चढ़ते हुये कुरेद-कुरेद कर हरे कर चुका था, सेठ को दिखाना चाहा ! उसे पूरा विश्वास था कि उसे देख कर सेठ के दिल में जरूर हमदर्दी पैदा हो जायगी, पर सेठ जी ने कुछ सुनना न चाहा और उसके सीने मे एक हुल्लड़-सा मच गया ।

सेठ के दिल मे हमदर्दी पैदा करने के लिये उसने अपने वे सारे दुख जो बीत चुके थे, गये दिनों की गहरी खाई से निकाल कर अपने दिल में भर लिये थे और उन सभी जख्मों की जलन, जो मुद्दत हुई मिट चुकी थी, उसने बड़ी मुश्किल से इकट्ठी करके अपनी छाती में जमा की थी। अब उसकी समझ में आया था कि इतनी चीजों को वह कैसे सँभाले ।

उसके घर मे बे-बुलाये मेहमान आ गये होते, तो वह उनसे बड़े रूखेपन से कह सकता था—"जाओ भाई, जाओ, मेरे पास इतनी जगह नहीं है कि तुम्हें बैठा सकूँ, और न मेरे पास पैसा है कि तुम सब की सेवा-सत्कार कर सकूँ।" लेकिन यहाँ तो मामला ही और था। उसने तो अपने भूले-भटके दुखों को इधर-उधर से पकड़ कर आप अपने सीने मे जमा किया था, अब भला वे बाहर निकल सकते थे !

हेर-फेर में उसे कुछ पता न चला कि उसके सीने में कितनी चीजे भर गई हैं, पर जैसे-जैसे उसने सोचना शुरू किया वह पहिचानने लग गया कि अमुक दुख अमुक समय का है और अमुक दर्द उस समय हुआ था। और जब वह सोच-विचार शुरू हुआ तो स्मरण-शक्ति ने बढ कर वह धुँध हटा दी, जो इन पर लिपटी हुई थी और कल के सारे दुख-दर्द आज के कष्ट बन गये और वह अपने जीवन की बासी रोटियाँ फिर अगारों पर सेंकने लग गया ।

उसने सोचा—थोडे से समय मे उसने बहुत कुछ सोचा—उसके घर का अन्धा दिया कई बार बिजली के उस बल्ब से टकराया, जो मकान मालिक के गजे सिर के ऊपर मुस्करा रहा था, कई बार उसके पैबन्द लगे हुये कपडे उन खूँटियों पर लटक कर फिर उसके मैले शरीर से चिपट गये, जो दीवाल मे गड़ी चमक रही थीं। कई बार उसे उस सर्वशक्तिमान् भगवान् की याद आई, जो बहुत दूर न जाने कहाँ

बैठा अपने भक्तों का ध्यान रखता है। मगर अपने सामने सेठ को कुरसी पर बैठा देख कर, जिसकी कलम की एक जुम्बिश कुछ का कुछ कर सकती थी, वह उस विषय में कुछ भी न सोच सका। कई बार उसे खयाल आया था, मगर वह उसके पीछे भाग-दौड़ न कर सका। वह बहुत घबरा गया था, आज तक उसने अपने मन में इतनी खलबली नहीं देखी थी।

वह इस खलबली पर ताज्जुब ही कर रहा था कि सेठ ने गुस्से में आकर उसे गाली दी! गाली—यों समझिये कि कानों की राह पिघला हुआ सीसा छन-छन करता हुआ उसके दिल में उतर गया और उस के सीने के अन्दर जो हुल्लड़ मचा उसका तो कुछ ठिकाना ही न था! जिस तरह किसी गर्मा-गर्म सभा में किसी शरारत से भगदड़ मच जाती है, ठीक उसी तरह उसके दिल में हलचल पैदा हो गई। उसने बहुत यत्न किये कि उसके वे दुःख-दर्द जो उसने सेठ को दिखाने के लिये इकट्ठे किये थे चुपचाप रहे, पर कुछ न हो सका। सेठ के मुँह से गाली का निकालना था कि वे सब बेचैन हो गये और अन्धाधुंध एक दूसरे के साथ टकराने लगे। अब वह यह नई तकलीफ बिल-कुल न सह सका और उसकी आँखों मे जो पहले ही से तप रही थीं, आँसू आ गये, जिससे उनकी गरमी और बढ़ गई और उनसे धुआँ-सा निकलने लगा।

उसके मन में आया कि उस गाली को, जिसे वह बहुत अर्शों तक निगल चुका था, सेठ के झुर्रियाँ पडे चेहरे पर उगल दे, मगर उसने यह विचार त्याग दिया, क्योंकि उसका स्वाभिमान तो बाहर सड़क पर पड़ा था—(अपोलो बन्दर पर नमक-लगी मूँगफली बेचने वाले का स्वाभिमान)। उसकी आँखे हँस रही थीं और उसके सामने नमक लगी मूँगफली के वह सभी दाने, जो उसके घर में एक थैले के अन्दर वर्षा के कारण गीले हो रहे थे, नाचने लग गये।

उसकी आँखे हँसी, उसका दिल भी हँसा, यह सब कुछ हुआ, पर वह कड़वाहट दूर न हुई जो उसके गले में सेठ की गाली ने पैदा कर दी थी। यह कड़वाहट अगर सिर्फ जबान पर होती तो वह उसे थूक देता, मगर वह तो बड़ी बुरी तरह उसके गले में अटक गई थी और निकाले न निकलती थी। और फिर एक अजीब किस्म का दुःख, जो उस गाली ने पैदा कर दिया था, उसकी घबराहट को और भी बढ़ा रहा

था। उसे ऐसा महसूस होता था कि उसकी आँखें, जो सेठ के सामने रोना व्यर्थ समझती थीं, उसके सीने के अन्दर उतर कर आँसू बहा रही हैं, जहाँ हर चीज पहले ही से शोक मे थी।

सेठ ने उसे फिर गाली दी, उतनी ही मोटी जितनी कि उसकी चर्बी-भरी गरदन थी, और उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो किसी ने ऊपर से उस पर कूड़ा-करकट फेंक दिया है। उसका एक हाथ अपने आप चेहरे की रक्षा के लिये बढा, मगर उस गाली की सारी गर्द उस पर फैल चुकी थी। अब उसने वहाँ ठहरना अच्छा न समझा, क्योंकि क्या ख़बर थी—क्या खबर थी—उसे कुछ खबर न थी—वह सिर्फ इतना जानता था कि ऐसी परिस्थितियों में किसी बात की सुध-बुध नहीं रहा करती।

वह जब नीचे उतरा तो उसे ऐसा अनुभव हुआ कि उस पत्थर की सातों मंज़िलें उसके कन्धों पर रख दी गई हैं।

एक नही, दो गालियाँ—बार-बार यह दो गालियाँ जो सेठ ने बिलकुल पान की पीक की तरह अपने मुँह से उगल दी थीं, उसके कानों के पास जहरीली भिड़ों की तरह भनभनाना शुरू कर देती थीं और वह बहुत बेचैन हो जाता था। उसकी समझ मे नहीं आता था कि उस गड़बड का क्या नाम रक्खे जो उसके दिल और दिमाग मे इन गालियों ने मचा दी थी। वह कैसे उस जलन को दूर कर सकता था, जिसमे वह फुंका जा रहा था। कैसे .पर वह सोचने-विचारने के क़ाबिल भी तो नहीं रहा था। उसका दिमाग तो उस समय एक ऐसा अखाड़ा बना हुआ था, जिसमें बहुत से पहलवान कुश्ती लड रहे हों। जो विचार वहाँ पैदा होता वह किसी दूसरे विचार से जो पहले ही से वहाँ मौजूद होता था, भिड़ जाता था और वह कुछ सोच ही न सकता था।

चलते-चलते जब एकाएक उसके दुख आँसू के रूप मे बाहर निकलने को थे, उसके मन में आया, मन में क्या आया लाचारी की हालत में वह उस आदमी को रोक कर जो लम्बे-लम्बे डग भरता उसके पास से गुजर रहा था, यह कहने ही वाला था—"भैया, मैं रोगी हूँ।" मगर जब उसने उस राह चलते आदमी की सूरत देखी तो बिजली का वह खम्भा, जो उसके पास ही जमीन मे गढा था, उसे कहीं ज्यादा भावुक दिखाई दिया और जो कुछ वह अपने अन्दर से बाहर निकालने वाला था, एक-एक घूँट करके फिर निगल गया।

फुट-पाथ में चौकोर पत्थर एक तरतीब के साथ जडे हुए थे, वह उन पत्थरों पर चल रहा था। आज तक उसने कभी उनकी सख्ती महसूस न की थी, मगर आज उनकी कड़ाई उसके दिल तक पहुँच रही थी। फुट-पाथ का हर एक पत्थर, जिस पर उसके क़दम पड़ रहे थे, उसके दिल के साथ टकरा रहा था। सेठ के पत्थर के मकान से निकल कर अभी वह थोड़ी ही दूर गया होगा कि उसका अग-अग ढीला हो गया।

चलते-चलते उसकी एक लड़के से टक्कर हुई और उसे ऐसा अनुभव हुआ कि वह टूट गया है। उसने उस आदमी की तरह, जिसकी झोली से बेर गिर रहे हों, इधर-उधर हाथ फैलाये और अपने आपको इकट्ठा करके धीरे-धीरे चलना शुरू कर दिया।

उसका दिमाग उसकी टाँगों के मुकाबिले मे ज्यादा तेजी के साथ चल रहा था। कभी-कभी चलते-चलते उसे ऐसा लगता था कि उसके शरीर का निचला हिस्सा बहुत पीछे रह गया है और उसका दिमाग बहुत आगे निकल गया है। कई बार इस खयाल से ठहरना पड़ा कि यह दोनों चीजे एक दूसरे के साथ-साथ हो जायँ।

वह फुट-पाथ पर चल रहा था, जिसके इस ओर सड़क पर 'पों-पों' करती मोटरों का ताँता बँधा था। घोडे गाड़ियाँ, ट्रामे, भारी भरकम ट्रक लारियाँ ये सब सड़क की काली छाती पर दनदनाती हुई चल रही थीं। एक शोर मचा हुआ था, पर उसके कानों को कुछ न सुनाई देता था, वह तो पहले ही से सायँ-सायँ कर रहे थे, जैसे रेलगाड़ी का एंजिन अधिक भाप बाहर निकाल रहा हो।

चलते-चलते एक लँगडे कुत्ते से उसकी टक्कर हुई, कुत्ते ने इस विचार से कि शायद उसका जख्मी सिर रौंद दिया गया है, "पों-पों" किया और अलग हट गया, और वह समझा कि सेठ ने फिर से गाली दी है—गाली! यह गाली ठीक उसी तरह उससे उलझ कर रह गई थी जैसे झरबेरी के काँटों में कोई कपड़ा। वह उससे अपने आपको छुड़ाने की जितनी ही कोशिश करता था, उतनी ही अधिक उसकी आत्मा पीड़ित होती जा रही थी।

उसे उस नमक लगी मूँगफली का खयाल नहीं था, जो उसके घर मे वर्षा के कारण गीली हो रही थी और न उसे रोटी-कपडे का खयाल

था। उसकी उम्र तीस वर्ष के लगभग थी और इन तीस वर्षों मे, जिनके परमात्मा जाने कितने दिन होते हैं, वह कभी भूखा न सोया था और न कभी नंगा ही फिरा था। उसे सिर्फ इस बात का दुख था कि उसे हर महीने किराया देना पड़ता था। वह अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट भरे, उस बकरे जैसी दाढी वाले हकीम की दवाइयों के पैसे दे, शाम को ताडी की बोतल के लिये दुअन्नी पैदा करे या उस गजे सेठ के मकान के एक कमरे का किराया दे। घरों और किरायों की फिलासफी हमेशा उसकी समझ से ऊँची रही थी। वह जब भी दस रुपये गिन कर सेठ या उसके मुनीम की हथेली पर रखता तो वह समझता था कि ज़बरदस्ती उससे यह रकम छीन ली गई है, और अब अगर वह पॉच वर्ष तक बराबर किराया देने के बाद सिर्फ दो महीने का हिसाब चुकता कर सका, तो क्या सेठ को इस बात का अधिकार होगा कि उसे गाली दे? सब से बड़ी तो यही बात थी, जो उसे खाये जा रही थी। उसे उन बीस रुपयों की परवाह नहीं थी, जो उसे आज नहीं कल अदा कर देने थे। वह उन दो गालियों के विषय में सोच रहा था, जो इन बीस रुपयों के बीच से निकली थीं। न वह बीस रुपयों का ऋणी होता और न सेठ के कठाली-नुमा मुँह से यह गंदगी बाहर निकलती।

मान लिया वह धनवान था, उसके पास दो मकान थे, जिनके एक सौ चौबीस कमरों का किराया उसके पास आता था; पर इन एक सौ चौबीस कमरों में जितने लोग भी रहते थे, उसके गुलाम तो नहीं थे? और अगर गुलाम भी होते, तो वह उन्हे गाली कैसे दे सकता था?

ठीक है, उसे किराया चाहिए, पर मैं कहॉ से लाऊँ? पॉच वर्ष तक तो उसको देता ही रहा हूँ, जब होगा—दूँगा। पिछले वर्ष बरसात का सारा पानी हम पर टपकता रहा, पर मैंने उसे कभी गाली नहीं दी, यद्यपि मुझे उससे ज्यादा गदी-गंदी गालियॉ आती हैं। मैंने सेठ से हज़ार बार कहा कि सीढी का डडा टूट गया है, इसे बनवा दीजिये, पर मेरी एक न सुनी गई। मेरी फूल-सी बच्ची गिरी, उसका दाहिना हाथ हमेशा के लिये बेकार हो गया। मैं गालियों के बजाय उसे कोस सकता था, पर मुझे उसका ध्यान ही नहीं आया, और दो महीने का किराया न चुकाने पर मैं गालियों के क़ाबिल हो गया। उसको यह ध्यान तक

गया था कि उसके बच्चे अपोलो बन्दर पर मेरे थैले से मुट्ठियाँ भर-भर के मूँगफली खाते हैं।

इसमे भी कोई सन्देह नही कि उसके पास इतना धन नहीं था जितना उस सेठ के पास था और ऐसे लोग भी होंगे जिनके पास इससे भी अधिक धन होगा, फिर भी वह कैसे गरीब हो गया? उसे गरीब समझ कर ही तो गाली दी गई थी, नहीं तो उस गञ्जे सेठ की क्या मजाल थी कि वह कुरसी पर बड़े इतमीनान से बैठ कर उसे दो गालियाँ सुना देता, जैसे किसी के पास धन-दौलत का न होना बडी खराब बात है? अब यह उसका दोष तो नहीं था कि उसके पास धन की कमी थी। सच पूछिये तो उसने कभी धन-दौलत के स्वप्न देखे ही न थे, वह अपने हाल में मस्त था, उसका जीवन बडे मजे मे बीत रहा था, पर पिछले महीने एकाएकी उसकी स्त्री बीमार पड़ गई और उसकी दवा-दारू में वह सब रुपये खर्च हो गए जो किराये मे जाने वाले थे। अगर वह खुद बीमार होता, तो बहुत सम्भव था कि वह दवा में रुपये न खर्च करता; लेकिन यहाँ तो उसके होने वाले बच्चे की बात थी जो अभी अपनी माँ के पेट ही में था। उसको सन्तान बहुत प्यारी थी, जो पैदा हो चुकी थी और जो पैदा होनेवाली थी। वह कैसे अपनी पत्नी की दवा न कराता? क्या वह उस बच्चे का बाप नहीं था? वह तो सिर्फ दो महीने के किराये की बात थी, अगर उसे अपने बच्चे के लिये चोरी भी करनी पड़ती, तो वह कभी न चूकता.. ...

चोरी? नहीं-नहीं, वह चोरी कभी न करता ..यों समझिये कि वह बच्चे के लिये बडे से बड़ा त्याग करने के लिये तैयार था, मगर वह चोर कभी न बनता .वह अपनी छिनी हुई चीज वापस लेने के लिये लड़ने-मरने को तैयार था, पर वह चोरी नहीं कर सकता था।

अगर वह चाहता तो उस वक्त, जब सेठ ने उसे गाली दी थी, आगे बढ कर उसका गला दबा देता और उस तिजोरी में से वे सारे नीले और हरे नोट निकाल कर भाग जाता, जिनको वह आज तक लाजवन्ती के पत्ते समझा करता था।.. नहीं-नहीं, वह ऐसा कभी न करता. लेकिन फिर सेठ ने उसे गाली क्यों दी?

पिछले वर्ष चौपाटी पर एक गाहक ने उसे गाली दी थी, इसलिये

कि दो पैसे की मूँगफली में चार दाने कड़ुवे चले गये थे और उसने उसके जवाब में उसकी गरदन पर ऐसी धौल जमाई थी कि दूर बेञ्च पर बैठे आदमियों ने भी उसकी आवाज सुन ली थी, मगर सेठ ने उसे दो गालियाँ दीं और वह चुप रहा।

केशवलाल खारी सींग वाले को जिसके विषय में यह मशहूर था कि वह नाक पर मक्खी भी न बैठने देता था, सेठ ने एक गाली दी और वह कुछ न बोला—दूसरी गाली दी तो चुप रहा, जैसे वह मिट्टी का पुतला है। पर मिट्टी का पुतला कैसे हुआ? उसने उन गालियों को सेठ के थूक भरे मुँह से निकलते देखा, जैसे दो बड़े-बड़े चूहे मोरियों से बाहर निकलते हैं, और वह जान-बूझ कर चुप रहा, इसलिये कि वह अपना स्वाभिमान नीचे छोड आया था—पर उसने अपना स्वाभिमान अपने से अलग क्यों किया?—सेठ की गालियाँ सुनने के लिये?

यह सोचते हुए उसे एकाएक विचार आया कि शायद सेठ ने उसे नहीं, किसी और को गालियाँ दी थीं नहीं-नहीं गालियाँ उसी को दी गई थीं, इसलिए कि दो महीने का किराया उसी की तरफ निकलता था। अगर उसे गालियाँ न दी गई होतीं, तो इस सोच-विचार की जरूरत ही क्या थी? और वह जो उसके सीने में हुल्लड़-सा मच रहा था, यह क्या बिना किसी कारण के उसे दुःख दे रहा था?—नहीं, उसे दो गालियाँ दी गई थीं।

जब उसके सामने एक मोटर ने अपने माथे की बत्तियाँ प्रकाशित कीं, तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह दो गालियाँ पिघल कर उसकी आँखों में धँस गई हैं—गालियाँ—गालियाँ वह झुँझला गया। वह जितनी कोशिश करता था कि उन गालियों के विषय मे न सोचे, उतने ही वेग से उनके विषय से सोचना पड़ता था, और यह मजबूरी उसे बहुत चिडचिड़ा बना रही थी और इसी चिड़चिडेपन में उसने खाहमखाह दो-तीन आदमियों को, जो उसके पास से गुजर रहे थे, दिल ही दिल में गालियाँ दीं—"ऐसे अकड के चल रहे हैं जैसे इनके बाप का राज है।"

अगर उसका राज्य होता तो वह उस सेठ को मजा चखा देता, जो उसे तले-ऊपर दो गालियाँ सुना कर अपने घर में यों आराम से बैठा है जैसे उसने अपनी गद्देदार कुरसी में से दो खटमल निकाल कर

बाहर फेंक दिये हैं; सचमुच अगर उसका अपना राज्य होता, तो वह चौक में बहुत से लोगों को इकट्ठा करके सेठ को बीच में खड़ा कर देता और उसकी गंजी खोपड़ी पर इस जोर से चपते मारता कि वह बिलबिला उठता, फिर वह लोगों से कहता कि हँसो, जी भरके हँसो, और वह स्वय हँसता कि हँसते-हँसते उसका पेट दुखने लग जाता—पर इस समय उसे बिलकुल हँसी नहीं आती थी—क्यों ? वह बिना अपने राज्य के भी तो सेठ के गँजे सिर पर धौल मार सकता था, उसे किस बात की रुकावट थी—रुकावट थी ? रुकावट थी, तभी तो वह गालियाँ सुन कर चुप हो रहा।

उसके क़दम रुक गए, उसका दिमाग भी एक-दो क्षण के लिये रुका और उसने सोचा कि चलो अभी इस झंझट को खतम ही कर दूँ। भागा हुआ जाऊँ और एक ही झटके में सेठ की गरदन मरोड़ कर उस तिजोरी पर रख दूँ, जिसका ढकना मगरमच्छ के मुँह की तरह खुलता था। लेकिन वह खम्भे की तरह जमीन में क्यों गढ गया था ? सेठ के घर की ओर पलटता क्यों नहीं था ? क्या उसमें साहस न था ?

उसमें साहस न था। कितने दुख की बात थी कि उसका सारा बल ठंढा पड़ गता था। यह गालियाँ ! वह इन गालियों को क्या कहता ? इन गालियों ने उसकी चौड़ी छाती पर रोलर-सा फेर दिया था—सिर्फ दो गालियों ने। यद्यपि पिछले हिन्दू-मुस्लिम दगे में एक हिन्दू ने उसे मुसलमान समझ कर लाठी से बहुत पीटा था और अध-मरा कर दिया था, पर उसे इतनी कमजोरी महसूस न हुई थी जितनी अब हो रही थी। केशवलाल खारी सींगवाला, जो कभी अपने दोस्तों से बड़े गर्व से कहा करता था कि वह कभी बीमार नहीं पड़ा, आज ऐसा चल रहा था जैसे वर्षों का रोगी है।

और यह रोग किसने पैदा किया था ? दो गालियों ने !

गालियाँ—गालियाँ—कहाँ थीं वे दो गालियाँ ? उसके मन मे आया कि अपने सीने के अन्दर हाथ डाल कर वह इन दो पत्थरों को, जो किसी हीले गलते ही न थे, बाहर निकाल ले और जो कोई भी उसके सामने आये, उसक सिर पर दे मारे। पर यह कैसे हो सकता था ? सीना मुरब्बे का अमृतबान थोड़े ही था।

ठीक है, लेकिन फिर कोई और तरकीब भी तो समझ में आये जिससे यह गालियाँ दूर हों। क्यों नहीं कोई आदमी बढ़ कर उसे उस दुख से छुड़ाने की कोशिश करता ? क्या वह सहानुभूति का पात्र न था ?—होगा ! पर किसी को उसके दिल का हाल क्या मालूम था, वह खुली किताब थोड़े ही थी और न उसने अपना दिल बाहर लटका रक्खा था। अन्दर की बात किसी को क्या मालूम ?

न मालूम हो, परमात्मा करे, किसी को न मालूम हो ! अगर किसी को अन्दर की बात का पता चल गया तो केशवलाल खारी सींगवाले के लिये यह डूब मरने की बात थी। गाली सुन कर चुप रहना साधारण बात थी क्या !

साधारण बात नहीं, बहुत बड़ी बात थी—हिमालय पहाड़ जैसी बड़ी बात थी। उसका गर्व मिट्टी में मिल गया था। उसकी तौहीन हुई थी, उसकी नाक कट गई थी। उसका सब कुछ लुट गया था। चलो, अब तो छुट्टी हुई। अब तो यह गालियाँ उसका पीछा छोड़ दें ! वह कमीना था, रजील था, नीच था, मैला साफ करने वाला नौकर था, कुत्ता था ! उसको गालियाँ मिलनी ही चाहिये थीं—नहीं, किसकी मजाल कि उसे गालियाँ दे और फिर बिना किसी अपराध के वह उसे कच्चा न चबा जाता—अरे यार हटाओ भी, यह सब कहने की बातें हैं—तुमने तो सेठ से ऐसे गालियाँ सुनीं जैसे वह मीठी-मीठी ोलियाँ थीं।

मीठी-मीठी बोलियाँ थीं, बड़े मजेदार घूँट थे, चलो यही सही—अब । मेरा पीछा छोड़ो, वरना सच कहता हूँ, मैं पागल हो जाऊँगा,—ये

लोग, जो बड़े आराम से इधर-उधर चल फिर रहे है, मैं इनमें से हर एक का सिर फोड़ दूँगा। भगवान् की कसम, मुझे अब ज्यादा ताब नहीं रहा। मैं जरूर पागल कुत्ते की तरह सब को काटना शुरू कर दूँगा। लोग मुझे पागलखाने में बन्द कर देंगे और मैं दीवारों के साथ अपना सिर टकरा-टकरा कर मर जाऊँगा—मर जाऊँगा, सच कहता हूँ, मर जाऊँगा और मेरी राधा विधवा और मेरे बच्चे अनाथ हो जायँगे। यह सब कुछ इस लिये होगा कि मैंने सेठ से दो गालियाँ सुनीं और चुप रहा, जैसे मेरे मुँह मे ताला लगा हुआ था, मैं लूला-लँगड़ा या पगु था।..परमात्मा करे, मेरी टाँगें इस मोटर के नीचे आकर टूट जायँ,.. मैं मर जाऊँ, जिसमे यह बक-बक तो खत्म हो...कोई ठिकाना है इन दुख का ? .. कपड़े फाड़ कर नगा नाचना शुरू कर दूँ...इस ट्राम के नीचे सिर दे दूँ, जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दूँ...क्या करूँ और क्या न करूँ ?

यह सोचते हुए उसे एकाएक विचार आया कि बाजार के बीज में खड़ा हो जाय और सब ट्रैफिक को रोक कर जो उसके मुँह में आये, बकता चला आय—यहाँ तक कि उसका सीना सारे का सारा खाली हो जायँ या फिर उसके मन मे आया कि खड़े-खड़े यहीं से चिल्लाना शुरू कर दे—"मुझे बचाओ, मुझे बचाओ !"

इतने में एक आग बुझाने वाला एंजिन सड़क पर टन्-टन् करता आया और एक मोड़ मे गुम हो गया। उसको देख कर वह ऊँचे स्वर में यह कहने ही वाला था—"ठहरो, मेरी आग बुझाते जाओ !" पर न जाने क्यों रुक गया।

एकाएक उसने अपने कदम तेज कर दिये। उसे लगा जैसे उसकी साँस रुकने लगी है। और अगर वह तेज न चलता तो बहुत मुमकिन था कि वह फट जाता। लेकिन जैसे ही उसकी चाल तेज हुई, उसका दिमाग आग का एक चक्र-सा बन गया। इस चक्र में उसके सारे पुराने और नये विचार एक हार के रूप में गुँथे गये—दो महीने का किराया, उसका पत्थर के मकान में प्रार्थना के लिये जाना—सात

मंजिलों की एक सौ बारह सीढ़ियाँ, सेठ की भद्दी आवाज, उसके गंजे सिर पर मुस्कराता हुआ बिजली का लैम्प और . यह मोटी एक गोली— फिर दूसरी, और उसकी खामोशी—यहाँ पहुँच कर आग के इस चक्र से तड़-तड़ गोलियाँ-सी निकलनी शुरू हो जातीं और वह अनुभव करता कि उसका सीना चलनी हो गया है।

उसने अपने कदम और तेज किये और आग का यह चक्र इतनी तेजी से घूमना शुरू हुआ कि आग की लपटों की एक बहुत बडी गेंद तो बन गयी जो उसके आगे-आगे जमीन पर उछलने-कूदने लगी।

वह अब दौड़ने लगा, लेकिन फौरन ही विचारों की भीड़-भाड में एक नया विचार ऊँचे स्वर में चिल्लाया—"तुम क्यों भाग रहे हो, किससे भाग रहे हो?—तुम कायर हो"'

उसके कदम धीरे-धीरे उठने लगे, ब्रेक-सा लग गया और वह धीरे-धीरे चलने लगा . वह सचमुच कायर था,... . वह भाग क्यों रहा था?—उसे तो बदला लेना था.... .बदला ..यह सोचते हुए उसे अपनी जबान पर रक्त का नमकीन स्वाद महसूस हुआ और उसके शरीर में एक फुरफुरी-सी पैदा हुई.. लहू...लहू . रक्त ..रक्त ..उसे [illegible]समान, जमीन, सब लहू ही मे रंगे हुए दीखने लगे—रक्त. ! इस [illegible]य उसमें इतना बल था कि वह पत्थर की रगों मे से भी लहू निचोड़ ले।

उसकी आँखों में लाल डोरे उभर आये, उसकी मुट्ठियाँ मिंच गईं [illegible]र उसके कदमों में दृढ़ता आ गई। अब वह बदला लेने पर तुल [illegible] था।

[illegible]ह बढा।

आने-जाने वाले लोगों मे वह तीर की भाँति अपना रास्ता बनाता [illegible] बढ़ा—आगे—और आगे।

जिस प्रकार तेज चलने वाली रेलगाडी छोटे स्टेशनों को छोड [illegible] कहती है, उसी तरह वह बिजली के खम्भों, दूकानों और लम्बे [illegible] बाजारों को अपने पीछे छोड़ता आगे बढ रहा था—आगे— [illegible]—बहुत आगे।